होशंगाबाद विज्ञान

…ी थी कभी चना	1
…एक दिन	2
…परदेशी पौधे	3
…गाव मेरी नज़र में	9
अंग्रेज तो गये, लेकिन	12
बच्चे फेल कैसे होते हैं	16
प से पतंग या पढ़ाई	24
बाल वैज्ञानिक संशोधन	25
सवालीराम	30
चमगादड़	32
दूरदर्शन	34
हाय री शिक्षा	35
भाषा क्या है?	36
बात खतों की	41

अंक - 24 शिक्षा व शिक्षकों से संबंधित पत्रिका सितम्बर 87

आम तौर पर माना जाता है कि कक्षा के अंदर शिक्षक स्वतंत्र होता है। लेकिन कक्षा के अंदर की सिमटी, सीमित बनावट की जकड़न पाठ्य पुस्तक लिखने वालों के पूर्वाग्रह और स्कूल की अनेक परिस्थितियों को अनदेखा करना .... और अपनी सामान्य बोली की लचीली और सटीक अभिव्यक्ति से परे होकर मानक भाषा के जड़ित ढाँचों में ढालने का दबाव .... इन सब के होते हुए क्या शिक्षक वाकई में स्वतंत्र है?

सम्पादन :
राघवेन्द्र तेलंग
हृदयकांत दीवान
सहयोग :
ब्रजेश सिंह
राजेश खिन्दरी
सुबीर शुक्ला
गोपाल राठी
चित्रांकन :
आमोद
राजेश यादव

होशंगाबाद विज्ञान

होशंगाबाद और विज्ञान पढ़ाने तक ही सीमित नहीं है बल्कि शिक्षा में नये सोच और नवाचार का प्रतीक है।

कभी घी कभी चना

जी हाँ, कहावत बहुत पुरानी है परन्तु इसकी सत्यता से आज भी इंकार नहीं किया जा सकता । अधिकांश मामलों में इसकी सत्यता आज भी बरकरार है । भोजों में प्रीतिभोज हो या मृत्यु भोज पहली परस कुछ मुक्त हस्तों से की जाती है, दूसरी परस में मात्रा का निश्चयीकरण होता है और बाद में केवल थाल घुमाने की औपचारिकता ।

उपरोक्त क्रम का मिलता-जुलता रूप शुरू होता है सन् 1978 से । प्रशिक्षण में विज्ञान कार्यक्रम के स्वरूप की याद करता हूँ तो एक विस्मृत याद ताजा हो जाती है जो शायद शब्दों में इस प्रकार बयान की जा सकती है :-

प्रशिक्षण के प्रथम दौर में भरपूर किट सामग्री उपलब्ध करायी गई थी, किसी धन्ना सेठ के घर में भोज की तरह। परोसने वालों और आग्रह कर-कर के ग्रहण कराने वालों की भी कमी नहीं थी । दूसरे दौर में ही सामग्री का निश्चयीकरण लागू हो गया और आज कालांतर में थाल घुमाने की औपचारिकता ही रह गई है ।

स्थानीय साधनों को विकल्पों के रूप में विज्ञान शिक्षण में लागू तो किया जा सकता है परन्तु इन विकल्पों की मात्रा अंगुलियों पर गिनने के बराबर ही है । "कम साधनों में अच्छा शिक्षण" कहने और पढ़ने में तो अच्छा लगता है परन्तु शिक्षण के समय यह वाक्य गले में ही अटक जाता है । ऐसी परिस्थितियों में जहाँ-पिछले दो वर्षों से थाल घुमाने की औपचारिकता हो रही है, वहाँ कार्यक्रम का भविष्य क्या होगा ? नवाचार कार्यक्रमों में इस प्रकार के अनिवार्य साधनों का अभाव उसे परंपरागत रूप में बदलने के लिए संक्रामक रोग की तरह काम करता है साथ ही नवाचार की विश्वसनीयता पर प्रश्न चिन्ह अंकित करता है ।

नवाचार के प्रसारक के रूप में शिक्षक की स्थिति तो और भी सोचनीय हो जाती है (यदि वह संवेदनशील है तो और भी मुसीबत)।

प्राकृतिक अभाव को तो प्रकृति की नियति मान कर संतोष किया जा सकता है कि चलो कोई बात नहीं वक्त-वक्त की बात है "कभी घी घना, कभी मुट्ठी भर चना, कभी वे भी मना ।" पर शिक्षा के क्षेत्र में इस प्रकार की कहावत का प्रत्यक्ष रूप हमारी प्रगतिशीलता, विवेक और प्रयत्नों की जागरूकता पर विश्वास और सफलता का प्रश्न-चिन्ह निर्मित करता है । इस बात पर हमें अनिवार्य रूप से सोचना पड़ेगा, इसका समुचित हल खोजना पड़ेगा, इसकी प्रतिपूर्ति के त्वरित उपाय करने होंगे । यदि ऐसा नहीं होता तो यह हमारी हार है, हमारे नवाचार की मौत है और नवाचार के पक्षधरों के मनोबल पर तुषाराघात है ।

एम.एल. नागेश 'गुरु'

एक दिन...

आज का दिन हमारे लिए एक अत्यंत प्रसन्नता का दिन था । आज हमें हमारी शिक्षिकाओं के साथ परिभ्रमण पर जाना है । हमारे साथ छठी और आठवीं कक्षा की छात्राएँ परिभ्रमण पर जा रही हैं । सारी रात यही सोचते-सोचते गुजर गई कि कल क्या जाना है, क्या देखना है, क्या एकत्रित करना है । जैसे-तैसे सुबह हुई ।

सुबह 8 बजे कक्षा 6, 7 और 8 की हम सभी छात्राएं माध्यमिक विभाग की समस्त शिक्षिकाओं के साथ शोर मचाते हुए, अनुशासित ढंग से हमारी स्कूल से कुछ ही दूर स्थित कैथोलिक चर्च वालों के खेत में पहुंचे ।

वहां हमने नीबू के पेड़ पर फपूंद, प्यूपा, इल्ली आदि देखे । उसके बाद हम सब अपनी कक्षा की एक छात्रा के खेत में भी गए। वहां खेत में काम करने वालों से हमारा वार्तालाप हुआ, उनसे काफी सारी जानकारियां हासिल हुईं :-

* गेहूं 147 - खाद डी·ए·पी·2। रोज के बाद पानी ।
* लोकमन गेहूं- 2। रोज के बाद पानी खाद डी·ए·पी· ।
* चना - डी·ए·पो·खाद, ग्रोमोर खाद, सम्राट खाद, 2। रोज के बाद पानी ।
* बोनी करने के पहले पूरे खेत में सुपर फास्फेट खाद ।
* गेहूं-चना - एक बार पानी देने के बाद यूरिया ।

इसके अलावा हमने आलू, भुट्टा, मटर, कुआं आदि देखे। । खेत से आते वक्त हम लोगों को चिड़िया के अंडे, कंबल कीड़ा देखने को मिले । कुछ छात्राओं ने बेर की झाड़ियों से बेर तोड़कर खाए ।

लौटने के बाद "फसलों के दुश्मन" अध्याय पर थोड़ी सी चर्चा हुई ।

कृषि विस्तार अधिकारी व ग्राम-सेवक हमारे साथ नहीं गए, इसलिए कुछ प्रश्नों के उत्तर अधूरे रहे । जिन्हें हम कुछ सहेलियों के साथ ग्राम सेवक के घर जाकर ढूंढ लाएंगे ।

सभी काम लगभग पूरे हो गए । हमें कुछ भूख लग आई, थक भी गए थे । हम सबने अपना-अपना टिफिन खोलकर, मिलकर, नाश्ता किया । खूब खेले, मस्ती की, घूमे-फिरे, धूम मचाई । और स्कूल के लिए वापस चल दिए ।

रीना जायसवाल, सोहागपुर

परदेशी पौधे

भारत में यूनानी, हूण, तुर्क, मुगल, अफगान, चीनी, पुर्तगाली, फ्रांसीसी, अंग्रेज और न जाने कितनी जातियां आईं । यहां तक कि आर्यों के लिए भी यही कहा जाता है कि वे भी बाहर से ही आए थे । बाहर से आने वाली इन जातियों में से कितने ही यहां के होकर रह गए । तभी तो शेख रंगरेजिन भी गाने लगी थी- "हौं तो मुगलानी, हिन्दुआनी ह्वे रहूंगी मैं ।" इसी तरह सैकड़ों पौधे जो कभी एकाध मुट्ठी बीज के रूप में आए थे आज भारत के कोने-कोने में फैलकर फल-फूल रहे हैं ।

इन पौधों को लाने का श्रेय भारत आने वाले कुछ यात्रियों को तो है ही । परन्तु यह आवश्यक नहीं कि वे सभी लोग इन परदेशी पौधों को भारत में उगाने के

विचार से ही लाए हों । हालांकि कुछ पौधे जानबूझकर ही मंगाए गए और उनको यहां उगाने के लिए कुछ व्यक्तियों ने बड़ा परिश्रम किया । पौधों का यह आवागमन हमारे देश में ही नहीं संसार के लगभग सभी देशों में होता रहता है । आयात-निर्यात के द्वारा दूसरी बहुत-सी चीजों के साथ अनायास ही कुछ पौधों के बीज एक जगह से दूसरी जगह पहुंच जाते हैं ।

भले ही "उल्टे बांस बरेली को" वाली बात हो पर थोड़ी देर के लिए मान लीजिए कि हमारे यहां से आस्ट्रेलिया के लिए गेहूं भेजा जाता है । अब इसकी कौन गारंटी ले सकता है कि गेहूं के साथ जौ, चना या मटर का एक भी दाना नहीं पहुंचेगा, इसी तरह आप कहीं से किसी एक तरह के बीज मंगाए तो उनमें कई तरह के बीज मिलने की संभावना बनी ही रहती है । 1870 में थामसन नाम के एक वनस्पति शास्त्री ने इडिनबर्ग के एक विक्रेता से किसी घास के बीज मंगाए थे । उन बीजों में कितनी मिलावट थी गिनिए - क्राइसेंथीमम, लाइक्निस, वेरोनिका, कस्कूटा, पोस्त और सत्यानाशी के बीज । उन का आयात-निर्यात खूब होता है । बिना साफ की हुई ऊन के साथ ट्रिब्यूल्स, मर्टीनिया, प्यूपेलिया तथा मैडीकागो आदि पौधों के बीज भी लिपटे पाए गए हैं । सामान को

टूट-फूट से बचाने के लिए जो रद्दी कागज और घास-फूस की भराई की जाती है उसके साथ-साथ भी अनेक पौधों के बीज समुद्र पार करते पकड़े गए हैं । क्लोरिस बार्बेटा और इम्पेरेटा सिलिंड्रिका नाम की अफ्रीकी घास इसी तरह भारत, लंका और दक्षिणी अमरीका पहुंची । कुछ पौधे अपने औषधीय गुणों के कारण भी एक जगह से दूसरी जगह पहुंचते रहे हैं...जैसे जमाल-गोटा, पोस्त और खुरासानी अजवाईन आदि ।

यहां हम आपके कुछ जाने-पहचाने पौधों की कहानी रख रहे हैं, जो आज इतने घुल-मिल गए हैं कि उन्हें परदेशी कहने में सचमुच ही संकोच होता है :-

<u>सब्जियों का सिरमौर आलू</u> -

आलू के बारे में कुछ भी कहना आफ्त जायका खराब करना है । लेकिन क्या आप विश्वास करेंगे कि भारत में आलू का वर्णन सबसे पहले सन् 1675 में मिलता है, उससे पहले नहीं । अंग्रेज इतिहासकार टेनी ने,

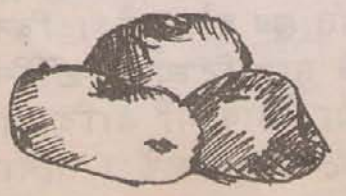

आसफ खां द्वारा अजमेर में सर टामस रो को दावत दिए जाने का जो वर्णन किया है, उसकी भोजन सूची में आलू भी शामिल है । वैसे भी वैज्ञानिक खोजों से यह पता चला है कि आलू मूलतः पेरू, बोलीविया और चिली अर्थात नई दुनिया, यानी अमरीका का निवासी है ।

<u>अमरूद-अमेरिका से इलाहाबाद</u>-

अमरूद भी हमारी जुबान पर इतना चढ़ चुका है कि अब विलायती होने के नाम पर उसे थूका नहीं जा सकता । लेकिन यह भी सात समुन्दर पार से ही आया है । वह तुकबंदी तो आपने सुनी होगी जिसमें कूद गए, बावजूद गए और अमरूद गए की तुकें भिड़ाई गई हैं । मियां अमरूद ने तो

और भी लम्बी छलांग लगाई है । आप अपनी तशरीफ का टोकरा अमरीका से लाए हैं । वहां मेक्सिको से लेकर पेरू तक खूब अमरूद होता है । यही इनकी जन्मभूमि मानी जाती है । हमारा देश अपने मसालों के लिए बड़ा मशहूर रहा है । क्या पता कुछ मेक्सिको वासी मिलने के लिए ही अमरूदों का टोकरा लिए भारत चले आए हों । वैसे सत्रहवीं सदी में भारत की यात्रा करने वाले एक परदेशी ब्रूटन ने भारतीय अमरूदों का वर्णन किया है । लगता है जरूर कहीं से इलाहाबादी अमरूद ब्रूटन के पल्ले पड़ गए होंगे ।

रबड़-ब्राजील से -

रबड़ के वृक्ष मूलत: केवल ब्राजील में पाए जाते थे । 1873 में क्ली-मेन्टस् मर्खाम ने जेम्स कॉलिन्स नामक अंग्रेज को रबड़ के बीज लाने के लिए ब्राजील भेजा था । हालांकि रबड़ के बागों में इस बात का बड़ा ख्याल रखा जाता था कि कोई रबड़ के बीज न चुरा ले जाए । लेकिन फिर भी जेम्स कॉलिन्स किसी तरह 2000 बीज

पाने में सफल हो ही गया और ये बीज समुद्री जहाज द्वारा "क्यू" भेज दिया गया। इनमें से 6 की पौध, इंडियन गार्डन सिवपुर कलकत्ता को भेजी गई। उन दिनों इसका नाम "रायल बॉटनीकल गार्डन" था । लेकिन दुर्भाग्यवश इनमें से एक भी पौधा न पनप सका, सब के सब मर गए ।

दक्षिणी अमेरिका के अमेजन प्रदेश में लगे कुछ बागानों का मालिक हेनरी वाइर-वाम नाम का एक उत्साही व्यक्ति "क्यू गार्डन" के लिए रबड़ के बीज भेजने की आशा लिए 1875 में ब्राजील पहुंचा । उसने

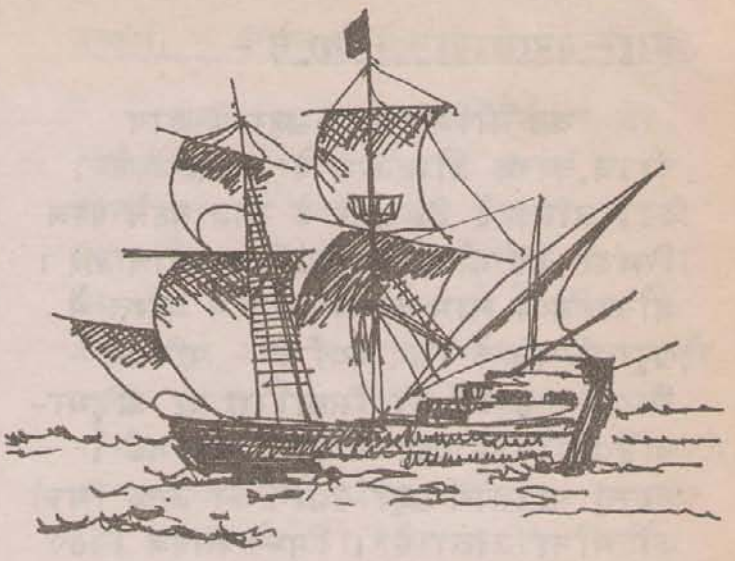

रबड़ बगान के मालिकों से महारानी विक्टोरिया को नमूना भेजने के बहाने दो-चार बीजों के नाम पर पाँच-छ: हजार बीज उड़ा दिए और केले के पत्तों में लपेट कर इंग्लैंड भाग आया । ये अमूल्य बीज "क्यू गार्डन" के तत्कालीन डाइरेक्टर सर जे·डी·कहुकर के पास पहुंचा दिए गए । इस बार 2700 अंकुर लहरा उठे । इनमें से कुछ पौध श्रीलंका, बर्मा, सिंगापुर और कुछ भारत के लिए भेजी गई । इन देशों की धरती रबड़ के पौधों को ऐसी पसंद आई कि देखते-देखते ही बड़े-बड़े बागान खड़े हो गए ।

उधर ब्राजील तथा अन्य पश्चिमी देशों में रबड़ पर "पत्तीमारी" रोग का ऐसा हमला हुआ कि धीरे-धीरे पश्चिमी गोलार्द्ध में रबड़ की पैदावार नहीं के बराबर रह गई । इस तरह ब्राजील से चलकर रबड़ हमारे यहां और हमारे कुछ पड़ोसियों के यहां पहुंची । आज ये देश दुनिया भर की रबड़ सम्बन्धी मांग की पूर्ति कर रहे हैं । ब्राजील वासी होने के कारण ही रबर के वृक्ष को वनस्पति शास्त्री "हेविया ब्राजीलिएन्सिस" कहते हैं ।

खजूर - उमरखय्याम के देश से -

अब लीजिए हुजूर, खजूर । आप ईरान, इराक और अरब के बाशिन्दे हैं । कहा जाता है कि खजूर के बीज पहले-पहल सिकंदर की फौज के साथ हिन्दुस्तान आए । बोनाविया नाम के एक बुजुर्ग ने भारत में खजूर उगाने के लिए पर्याप्त परिश्रम किया । उन्हीं की सिफारिश पर बढ़िया-बढ़िया किस्में यहां लाकर उगाई गईं । परन्तु भारतीय खजूर-उद्योग का जनक मिल्ने को माना जाता है । मिल्ने साहब 1909 में पंजाब के कृषि विभाग में "इकोनोमिक-बॉटनिस्ट" थे ।

कॉफी - इथियोपिया से -

इथियोपिया से चलकर यह आधुनिक पेय भारत कैसे पहुंचा, इसके बारे में हम ठीक-ठीक कुछ नहीं कह सकते । एक मुस्लिम तीर्थ यात्री बाबा बुडन या बुड्डन के लिए बताया जाता है कि करीब ढाई सौ साल पहले जब वे मक्का से हज करके लौट रहे थे तो अपने साथ कॉफी के सात बीज भी लेते आए । ये बीज केरल में कुद्रेमुख नाम की पहाड़ी पर बोए गए । किन्तु भारत में कॉफी के विधिवत् उत्पादन का श्रेय मिस्टर केनन को दिया जाता है, जिन्होंने 1830 में चिक्कमंगलूर (दक्षिण-भारत) में कॉफी के पौधे लगाए थे ।

हमारे एक मित्र मध्यकालीन हिन्दी साहित्य पर शोध कार्य कर रहे हैं । अपनी खोजों के दौरान उन्हें जहांगीर के शासन-काल में पेय के रूप में कॉफी के प्रचलित होने का प्रमाण मिला है । जहांगीर के शासन काल में "सर टामस-रो" के साथ "एडवर्ड टेरी" नाम का अंग्रेज भी आया था, सन् 1615-19 में । उसने अपनी भारत यात्रा का वृत्तान्त "ए वॉयेज टू ईस्ट इंडिया" शीर्षक से एक पुस्तक में किया है जो 1655 में तांबे की प्लेटों पर प्रकाशित हुई और लंदन में पुनर्मुद्रित हुई है तथा दिल्ली विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में देखी जा सकती है । इस पुस्तक में टेरी ने बताया है कि किस तरह जहांगीर काले से बीजों का पेय बनाकर पीता था ।

कुनैन और पुर्तगालियों की देन-

परदेशी पौधों की यह सूची काफी लम्बी है । जिससे कुनैन बनाई जाती है, "सिनकोना" नाम का यह पौधा दक्षिण-अमरीकावासी है । इंडिया आफिस, लंदन का एक अधिकारी-क्लीमेन्ट्स मर्खाम, रबड़ के पौधे तो न लगा सका मगर सिनकोना के बीज लाने और उगाने में सफल हो गया। 1860 में नीलगिरि और दार्जिलिंग में लगाए

गए पौधे आज बंगाल और मद्रास के कुछ हिस्सों में खूब उगाए जाते हैं । शायद इन्हीं के डर से अब मलेरिया भारत से भागने की फिराक में है ।

परदेशी पौधों की इस चर्चा में पुर्तगालियों की चर्चा न करना धृष्टता होगी मलाबार तट पर, भूमि का कटाव रोकने के लिए ही सही पुर्तगालियों ने करीब 400 साल पहले काजू के पौधे लगाए । ये काजू

भी बड़ी दूर--दक्षिणी अमरीका का रहने वाला है । अब तो ये हाल है कि भारत विश्व का सबसे बड़ा काजू उत्पादक है । दक्षिणी भारत में पश्चिमी तट के अधिकांश व्यक्तियों का मुख्य भोजन "टेपीओका" नाम का कंद भी सत्रहवीं सदी में पुर्तगालियों द्वारा भारत लाया गया ।लेकिन वनस्पति विज्ञानी बर्किल का कहना है कि यह पौधा 1840 में सीधा दक्षिणी अमरीका से लाया गया था । अब तो भारतीय कृषि वैज्ञानिक भी इसकी पैदावार बढ़ाने के लिए प्रयत्नशील हैं । पुर्तगालियों की अन्य देनों में सीताफल, अन्नानास और पपीता भी गिने जाते हैं ।

जलकुंभी - बंगाल की खाड़ी से दिल्ली तक

जलीय पादप "आइकोर्निया" या "जलकुंभी" भारत में विदेशी संक्रमण का जीता जागता उदाहरण है । इसकी कहानी बंगाल से शुरू होती है । "मार्गन" नाम का एक अंग्रेज अपने बंगले में लगाने के लिए, ये बैंगनी फूल पौधे ले आया । यह पौधा बड़ी जल्दी बढ़ता है । किसी तालाब में एक पौधा डाल दीजिए । कुछ ही दिन में इतनी वानस्पतिक वृद्धि होगी कि पूरा तालाब घिर जाएगा । तो हुआ यह कि किसी तरह मार्गन साहब के बंगले से यह पौधा नारायणगंज बंगाल के पास की नदी में पहुंच गया । फिर क्या था पूरी नदी में जलकुंभी ही जलकुंभी नजर आने लगी । नाव चलाना मुश्किल हो गया । मछलियां मरने लगी । बड़ा कोहराम मचा । आखिरकार 2-4 कडी नामक हार्मोन छिड़ककर पौधों में श्वसन की गति काफी बढ़ा दी गई । फलत: पौधे सूखने लगे । मगर यह सब होते-होते

पूरे हिन्दुस्तान में यह पौधा अपनी जड़ें जमा चुका था । बाढ़ के पानी ने इसको उस छोर से इस छोर तक पहुंचा दिया । कई साल पहले हमारे नगर जलेसर (एटा, उत्तर प्रदेश) में बाढ़ के पानी के साथ ही पहुंचा था । उस साल सिंघाड़े उगाने-वालों को बड़ी दिक्कत हुई । कुछ साल

पहले तक दिल्ली के रोशन-आरा बाग की झील जलकुंभी से भरी पड़ी थी । ताल-तलैयों की नगरी भोपाल के तालाब भी इससे नहीं बच सके । इस पौधे ने भारत ही नहीं अनेक देशों में बड़ी विकट समस्या खड़ी कर दी थी । यहां तक कि इससे छुटकारा पाने के लिए कुछ देशों को संयुक्त राष्ट्र संघ की सहायता लेनी पड़ी ।

रमेशदत्त शर्मा

आपको यह लेख पढ़कर आश्चर्य तो हुआ होगा । ऐसे पौधे जो हमारे रोजाना खान-पान के, संस्कृति के अंग हो गए हैं, वे आज से 200-400 साल पहले तक हमारे देश में होते ही नहीं थे ।

ऊपर आपने आलू और अमरूद की बात तो पढ़ी । इसी तरह टमाटर, हरी-मिर्च, शिमला मिर्च, मक्का (भुट्टा), कद्दू आदि दक्षिण अमरीका से आकर पिछले 400 सालों में ही भारत में फैले हैं । एक जमाना था जब तेल (तैल) का मतलब ही था तिल्ली का तेल । मगर आज तिल्ली के तेल को कौन पूछता है । सब को फल्ली का तेल चाहिए । मूंगफली भी मूलत: दक्षिण अमरीका की निवासी है । बस कुछ 100 साल पहले अमरीका में इससे तेल निकाला जाने लगा, और भारत में पिछले 50 सालों में ।

हमारे पूर्वज तो सदियों से पान-सुपारी खाते आ रहे हैं मगर 400 साल पहले उन्होंने तम्बाकू का नाम ही नहीं सुना था । तम्बाकू का आगमन भारत में दक्षिण अमरीका से हुआ ।

इन सब पौधों के बारे में आज से 500 साल पहले यूरोप या भारत में किसी को मालूम नहीं था । पद्रहवीं शताब्दी के आखिर में यूरोप के व्यापारी दूर-दराज के देशों से व्यापार करने और उन पर अपनी हुकूमत जमाने निकले थे । इसी दौरान उन्होंने अमरीका की खोज की और वहां के अजीबो-गरीब पौधों का पता लगाया । इनमें से अधिकतर इंग्लैंड या फ्रांस के वातावरण में अच्छी तरह नहीं पनपते थे - आखिरकार वे पौधे गर्म प्रदेशों के निवासी थे । जब यूरोप के लोग भारत आये तो साथ में इन पौधों को भी लेते आए । पौधों को हमारा देश खूब रास आया और वे तबियत से फैलते गए । हमारे किसानों को भी इनका स्वाद पसंद आया - वे उन्हें मेहनत से उगाने लगे ।

आलू, मक्का, मिर्ची, और तम्बाकू ये चारों हमारी कृषि और खान-पान के लिए क्रांतिकारी साबित हुए - कैसे ? आप खुद सोचिए ।

मेरा गांव मेरी नज़र में

आप, आपका घर, आपके पड़ौसी, आपके यहां की पाठशाला, डाकघर, खेत-खलिहान यानी कुल मिलाकर आपका गांव।
यह स्तंभ आपके लिए है ताकि औरों को मालूम हो कि आपकी नज़र में कैसा है आपका गांव!

खण्डवा से होशंगाबाद बस रोड पर 45 कि॰मी॰ दूर ग्राम-छनेरा लगभग 3000 की आबादी का गांव है। सड़क से जुड़ा हुआ होने के कारण यहां चाय-पान की 10 दूकानें स्थायी हैं। पोस्ट आफिस, तारघर, बचत बैंक, बैंक ऑफ इंडिया की शाखा भूमि विकास बैंक की शाखा, वन-परिक्षेत्र कार्यालय एवं पूर्व माध्य॰स्तर तक विद्यालय हैं प्राथमिक कन्या शाला भी है।

गांव में अधिकांश कृषक परिवार रहते हैं। श्रमिक वर्ग का मोहल्ला जिसमें आदिवासी लोग रहते हैं यहां भी गांव की कृषक आबादी के साथ जुड़ा हुआ है। प्रति सोमवार यहां बाजार लगता है। बाजार में बाहर के व्यापारी आते हैं, उन्हीं की प्रेरणा से यहां के कृषक जो कि व्यवसाय में कुशलता एवं रूचि रखते थे मौसमी व्यवसायी हो गये हैं। ये लोग अपनी कृषि के साथ-साथ शेष समय में व्यवसाय भी कर लेते हैं। बैंक, स्कूल एवं रेंजआफिस के कारण शासकीय कर्मचारियों का एक वर्ग भी गांव में निवास करता करता है। कर्मचारियों की कुल संख्या लगभग - 60 है। शासकीय आवास सुविधा के नाम पर वन-विभाग के 5 एवं शिक्षा विभाग के लिए - । भवन, इस तरह कुल 6 छह कर्मचारियों की आवास व्यवस्था शासन ने की है शेष सभी गांव में किसी तरह अस्तित्व बनाये हैं या नजदीक के शहर हरसूद से आना-जाना करते हैं।

छनेरा में पानी व्यवस्था संतोषप्रद नहीं है 8-9 हेण्ड पम्प है जो मात्र 1/10 भाग को आबादी की पूर्ति करते हैं कुओं की संख्या लगभग-20 है इनमें से मात्र-5 कुएं ही गांव की प्यास बुझाने के लिए अप्रेल तक साथ देते हैं अप्रेल के बाद इनका जलस्तर इतना गिर जाता है कि समीप के खेतों में बने कुओं का सहारा लेना पड़ता है।

गांव से 4 कि॰मी॰ उत्तर में घोड़ा पछाड़ नदी है इसमें भी जल संग्रह की क्षमता कम है । पश्चिम में 8 कि॰मी॰ पर छोटी तवा नदी बहती है यदि छोटी तवा से पाइप लाइन द्वारा पानी लाया जाता है तब ही छनेरा की जल व्यवस्था का स्थायी हल संभव है ।

गांव का प्रशासन ग्राम-पंचायत द्वारा संचालित होता है । ग्राम-पंचायत भवन से लगा हुआ ग्रामीण सचिवालय भवन है इसमें राजस्व कर्मचारियों की बैठक हुआ करती है । जनपद पंचायत हरसूद द्वारा पशु - चिकित्सालय चलाया जाता है । 5 वर्ष से कम आयु के बच्चों के लिए बाल मंदिर भवन बना है यह सड़क किनारे माध्यमिक शाला परिसर में है । स्वास्थ्य विभाग की एक नर्स उप-स्वास्थ्य केन्द्र में पदस्थ है । 2 जन बहुउद्देशीय रक्षक, एक बहुउद्देशीय स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता पदस्थ हैं । विद्युत विभाग का "जूनियर इंजीनियर कार्यालय" भी सड़क के किनारे ग्राम पंचायत द्वारा निर्मित "सराय" के एक कमरे में शुरू किया गया है । लगभग 15या 20 कर्मचारी विद्युत विभाग के यहां कार्यरत हैं ।

छनेरा से लगी हुई शासकीय भूमि का एक बड़ा भाग नर्मदा सागर बांध में होने वाले विस्थापितों की आवास योजना हेतु सुरक्षित रखा गया है । किन्तु निकट भविष्य में यह किसी शहर का रूप ले ऐसी संभावनाएं कम हैं । ग्राम में संतबुआरदास बाबा की मढ़ी है । मढ़ी के चारों तरफ हरे-भरे वृक्ष लगे हुए हैं । गांव का यह एक मात्र स्थान है जो किसी देवालय या पार्क उद्यान की कमी महसूस नहीं होने देता । प्रतिवर्ष यहाँ कार्तिक माह में शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा को मेला भरता है । आइये मेले को करीब से देखें ।

मेले में स्थानीय क्षेत्र के पशुओं के साथ ही राजस्थान एवं हरियाणा के पशु भी विक्रय हेतु लाये जाते हैं । 4-5अस्थाई चल सिनेमा के आ जाने से मेले में चहल - पहल और बढ़ जाती है । अक्सर यह मेला पूनम के बाद ही आरंभ होता है क्यूंकि

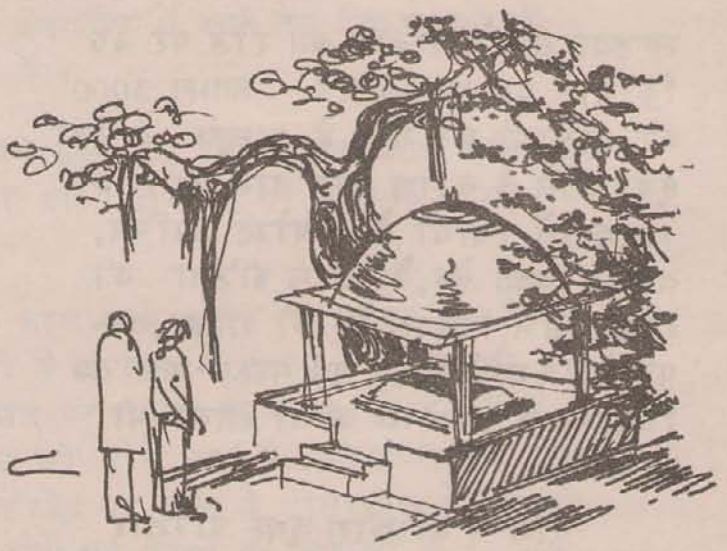

पूर्णिमा का प्रमुख दिन नजदीक ही लगने वाले ओंकारेश्वर मेले का होता है । उस दिन तक सभी व्यापारी एवं सिनेमा वहां रहते हैं और बाद में यहां आते हैं इसलिए यह विलम्ब से शुरू होने का प्रमुख कारण भी है ।

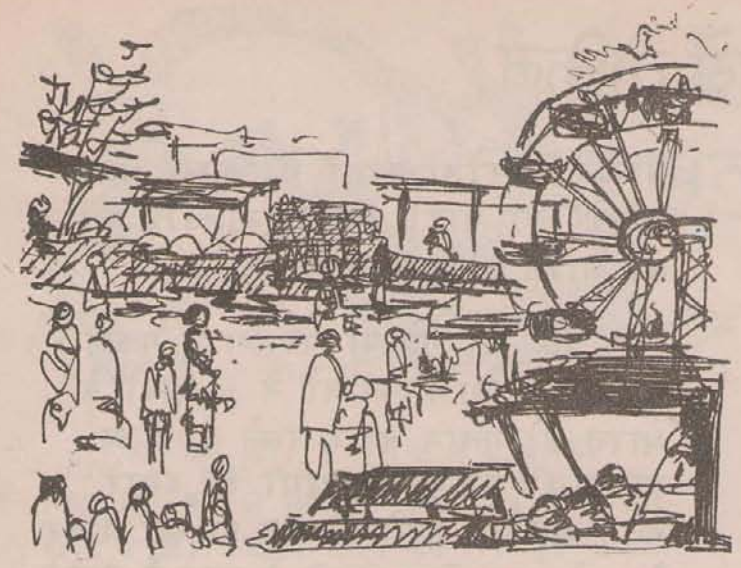

वस्त्र, किराना, कटलरी, बर्तन, मिठाई, लोहा, प्रसाधन, भोजनालय सब्जी आदि की दुकानों को पंक्तियों में स्थान दिया जाता है । जिससे मेले की सुन्दरता और बढ़ जाती है । मेले के प्रमुख दिन में सभी दुकानों को विशेष रूप से सजाया जाता है । पारितोषिक वितरण सामारोह शाम को होताहैंजिसमें सर्वोत्तम सजावट की दुकानों को पुरस्कार प्रदान किये जाते हैं । शाम को आतिशबाजी का आयोजन किया जाता है ।

वैसे तो दीपावली के एक सप्ताह बाद से ही यहां मेले की तैयारियां शुरू हो जाती है और अन्त में पूरी तरह समाप्त होने तक एक माह पूरा लग जाता है ।

मेले से ग्राम पंचायत को अच्छी आय हो जाती है । समीप के क्रेता आवश्यक वस्तुएं मेले से ही खरीद लेते हैं । मेले के बहाने अन्य दूर-दराज के लोग जो आत्मीयता रखते हैं, मिल जाते हैं । और भी कई निवासी परोक्ष रूप से मेले के कारण ही लाभान्वित होते हैं ।

मेले के कारण स्थानीय शालाओं में पढ़ाई नहीं हो पाती । व्यर्थ की खरीदी से आर्थिक हानि भी उठाना पड़ती है । छनेरा के निवासियों की यह दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है क्योंकि मेले के समय "मेजबान" की भूमिका असहनीय बन जाती है । फसलों में खलिहान बनाने की जगह मेला लगने से फसलों की गहाई में अनावश्यक विलंब होता है । आसपास के खेतों में फसल और घास की चोरी की घटनाओं की संभावनाएं अधिक हो जाती है ।

सी. एल. राजोरिया

प्रधान अध्यापक
ने शिक्षकों से कहा
मासिक गोष्ठी में
विज्ञान शिक्षक ही जायेंगे
हां !
वहां हुई टी.ए./डी.ए./छुट्टी
की चर्चा से
यहां सभी को अवगत करायेंगे।

— घनश्याम

अंग्रेज तो गये लेकिन ...

हम जानते और मानते हैं कि भारत गाँवों का देश है । भारत की 80 फीसदी जनता गाँवों में रहती है । ये गाँव सदियों पुराने हैं । इनके आधार पर ही हमारा देश खड़ा है, उसकी शक्ति और संस्कृति खड़ी है । भारत का इतिहास भारत के गाँवों के बनने-बिगड़ने का इतिहास है । राजा-महाराजा लोगों के शासन और लड़ाई - झगड़े के इतिहास को ही भारत का इतिहास मानना गलत है । भारत की आत्मा तो भारत माँ की गोद में बसे लाखों गाँवों में रहती आयी है ।

अंग्रेजों की गुलामी से पहले तक भारत के गाँवों की अपनी व्यवस्था थी, अपना कारोबार था । हर गाँव अपने- आप में एक आजाद इकाई था । चालाक अंग्रेजों ने सोचा कि भारत के गाँव अगर इसी तरह आजाद रहेंगे, तो भारत को गुलाम बनाये रखना मुश्किल होगा । इसीलिए अंग्रेजों ने गाँव की पूरी व्यवस्था तोड़ दी । भारत दो सौ साल के लिए गुलाम हो गया ।

लेकिन फिर भारत की आत्मा छट-पटायी और भारतवासी अँगड़ाई लेकर

जाग उठे करोड़ों कण्ठों से "अंग्रेजों, भारत छोड़ो" का नारा बुलन्द हुआ और अंग्रेजों को भारत छोड़कर जाना पड़ा ।

अंग्रेज तो गये पर एक भारी गलती की हमारे देश के नेताओं ने । अंग्रेजों ने भारत को गुलाम बनाये रखने के लिए सत्ता की जो कुर्सी बनायी थी, हमारे नेता अंग्रेजों के हटते ही उस पर खुद जाकर बैठ गये । इसलिए किसी ने कहा है "पहले आजाद गाँवों का गुलाम देश था, अंग्रेजों के जमाने में गुलाम गाँवों का गुलाम देश हुआ और अब आजादी के बाद गुलाम गाँवों का आजाद देश है भारत ।"

भारत की जनता ने अपनी आँखों से देखा कि गोरे साहब तो चले गये, लेकिन अब उनके जाते ही अपने देश में नये साहब पैदा हो गये - काले साहब । अपने देश के तौर-तरीकों को तो इन लोगों ने झटक कर फेंक दिया और गोरे साहबों का छोड़ा गया बाना धारण कर लिया ।

नतीजा क्या हुआ ? पहले जनता के कन्धे पर अंग्रेज शासक चढ़कर बैठे और उसे दबाये हुए थे, अब जनता के वोट से पुराने ही ढंग की अफसरशाही के साथ मिलकर नेता लोग उसके ऊपर सवार हो गए ।

कहा तो यह गया कि देश में लोकतंत्र कायम किया जा रहा है, लेकिन लोकतंत्र के बारे में जनता को सही ढंग से बताया नहीं गया । हर नेता वोट देने वाली जनता को अपनी और अपने दल की बात बताकर उसे बहकाता रहा ।

अंशुमान कापसे, 10वीं शाहपुर

बैताल छब्बीसी

फिर एक बार श्मशान में प्रवेश कर सिद्ध बड़ पर से मुर्दे को उतारकर कन्धे पर लिये राजा विक्रम चलने लगे तो मुर्दे ने यह वार्ता शुरू की --

भ्रष्टाचार नामक कोई नगर था । हालांकि उसका असली नाम तो कुछ और ही था किन्तु समूचा नगर भ्रष्टाचार में लिपटा होने की वजह से जनता ने ही उसका नाम भ्रष्टाचार नगर कर दिया था । आश्चर्य की बात तो यह थी विक्रम, कि सारे भ्रष्टाचारी प्रामाणिक और पवित्र होने का ढोंग करते और अपना भ्रष्टाचार साबित करने के लिए जनता को चुनौती देते थे । अत: उनमें से सच्चे प्रामाणिक कितने हैं यह बताना बड़ा ही मुश्किल था। इसलिए भ्रष्टाचारियों के खिलाफ राजा कोई कदम नहीं उठा सकता था ।

इतने में राजा से एक महात्मा की भेंट हो गयी । महात्मा के सामने राजा ने अपने दिल का उफान प्रकट किया ।

राजा की बात सुनकर महात्मा भी आर्द्र हो उठे । उन्होंने अपने थैले से तिलिस्मी चश्मा निकालकर राजा को देते हुए कहा: "इसमें तुम्हारा काम बन जायेगा । इसे पहनकर देखने से तुम्हें भ्रष्टाचारी को पहचानने में आसानी होगी । तुम देखोगे कि भ्रष्टाचारी के सिर पर सींग निकल आये हैं ।"

राजा तो खुश हो गया । अब वह भ्रष्टाचारियों को पकड़कर कड़ी सजा दे सकेगा ।

और राजा ने यह तिलिस्मी चश्मा पहनकर भ्रष्टाचारियों की खोज शुरू कर दी ।

सामने से आते हुए संरक्षण मन्त्री को तिलिस्मी चश्मे से देखते ही राजा भड़क उठा । संरक्षण मन्त्री के सिर पर सींग निकले हुए दिखायी दिये । राजा को विशेष दु:ख इसलिए हुआ कि इस संरक्षण मन्त्री को वह बड़ा ही प्रामाणिक और धार्मिक मानता था ।

उसी वक्त किसी कारण से टैक्स कलेक्टर राजा से मिलने आया । राजा ने चश्मे की आड़ से देखा तो क्रोध से मुट्ठियाँ भींच लीं । टैक्स कलेक्टर के सिर पर भी सींग निकले हुए थे ।

उसके बाद तो राजा ने नगर के बड़े-बड़े व्यापारी, वकील, इंजीनियर तथा समाजसेवकों को बुलवाया । उन सबके सिर पर भी सींग दिखायी दिये । इन सबके द्वारा किये गये भ्रष्टाचार की जाँच करने के लिए राजा ने निश्चय कर किया । इन सबकी सूची बनाने के लिए राजा ने अपने निजी सचिव को सूचना दी । सूचना देते समय सचिव के सामने देखते ही राजा चौंक उठा । उसके भी सिर पर सींग निकले हुए थे । राजा दुखी हो गया । उन सबके बारे में क्या किया जाय, इस पर सोचते हुए वह अपने निजी खण्ड में चला गया और द्वार बंद कर लिये ।

फिर भी राजा को इस बात का सन्तोष था कि वह भ्रष्टाचारियों को पकड़ सका है । मन-ही-मन वह उस महात्मा को धन्यवाद देने लगा कि जिसने यह तिलिस्मी चश्मा देकर भ्रष्टाचारियों को पहचानने में मदद की है ।

इतने में एक कौतुक हुआ । सामने लटकते हुए शीशे पर राजा की नजर पड़ी और वह जोर से चीख उठा । उसके सिर पर भी सींग निकल आये थे···।

वार्ता को यहीं समाप्त कर बेताल ने राजा विक्रम से पूछा : "तो विक्रम । बोल अब राजा क्या करेगा ?"

"चश्मा फोड़ डालेगा··" विक्रम ने उत्तर दिया और मुर्दा पुनः एक बार बड़ पर लटक गया ।

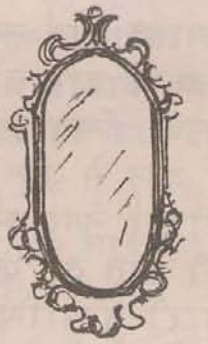

●

जैसे बेवकूफ बनने की हाँबी हो, राजा विक्रम ने कुछ इसी तरह पुनः बेवकूफ बनने के लिए श्मशान में प्रवेश कर सिद्ध बड़ से मुर्दे को उतारकर, कन्धों पर डाल उज्जैन के मार्ग पर चलना शुरू किया तभी मुर्दे ने यह कथा शुरू की :

और उस नगर के दो तस्करों ने एक सेठ के यहाँ डाका डाला । बड़ी मुश्किल से दोनों ने अलमारी का ताला- तोड़ा । एक चोर ने अलमारी खोलकर, अलमारी के दराज में हाथ डाला तो उसके हाथ में एक किताब आ गयी । उसने किताब पर

टॉर्च फेंकी । टॉर्च के प्रकाश में पुस्तक का नाम देखकर वह हंस दिया ।

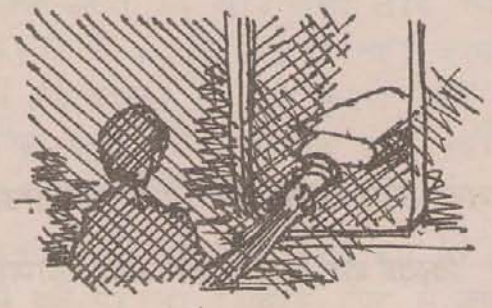

"क्यों क्या हुआ ?" दूसरे चोर ने दबी आवाज में पूछा । उसे उत्तर देने के बजाय पहले चोर ने दूसरे चोर के हाथ में वह किताब रख दी । दूसरे चोर ने भी बैटरी के प्रकाश में नाम पढ़ा और फिर वह भी हंसने लगा···

कथा को यहीं रोककर मुर्दे ने राजा विक्रम से पूछा, "और विक्रम उस किताब का नाम क्या होगा और नाम पढ़कर दोनों चोरों को हंसी क्यों आयी होगी ?"

"उस किताब का नाम "नीतिशास्त्र" होगा और इन दोनों ने साथ मिलकर बरसों पहले वह किताब लिखी होगी···" विक्रम ने जवाब दिया ।

और फिर से वह मुर्दा उसे बेवकूफ बनाकर सिद्ध बड़ पर लटक गया ।

विनोद भट्ट

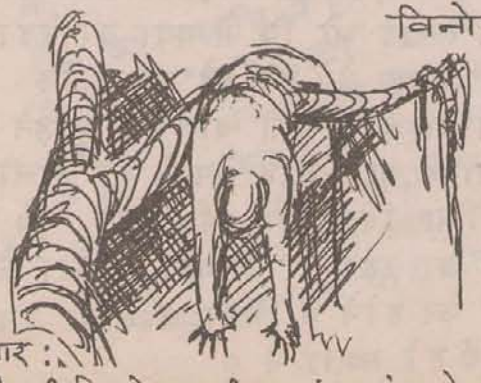

साभार :
"इसी शीर्षक से प्रकाशित व्यंग्य संग्रह से

उसकी
कभी छुट्टी नहीं होती
सारा दिन
सना रहता है कीचड़ में
कभी भूखे पेट काम करता है
कभी सो जाता है अधखाए
ऐसी कोई जगह नहीं
रहने लायक, इसके पास
जिसे वह अपना कह सके
उसके पास हरदम रहता है
खरी मेहनत का काम
तूफान-आंधी में भी
नहीं मिलता तनिक आराम
जी तोड़ मेहनत करके वह
भरता है अन्न के गोदाम
फिर भी उसके घर में
नहीं है एक दाने का नाम
फसल उगाकर पाता
हिस्सा एक चौथाई
इतना ही पाकर वह
ज़िंदा रहता मेरे भाई
कैसे ?

अंशुमान कापसे

बच्चे फेल कैसे होते हैं

'होशंगाबाद विज्ञान' के पिछले अंक में हमने जॉन होल्ट की किताब "हाऊ चिल्ड्रन फेल" की भूमिका का अनुवाद प्रस्तुत किया था। आपको याद होगा कि जान होल्ट अमरीका के एक जाने-माने शिक्षक व शिक्षाविद् हैं। बच्चों की शिक्षा के बारे में उन्होंने कई किताबें लिखी हैं। उपर्युक्त पुस्तक में उन्होंने अपनी डायरी के वे पन्ने प्रस्तुत किए हैं जो स्कूल में बच्चों को पढ़ाने के बाद वे लिखा करते थे। इन पन्नों में वे अपने अवलोकन, अपने अनुभव व अपनी स्थितियां लिखते थे।

इस बार आइए उनकी डायरी के कुछ पन्ने हम भी पढ़ें। डायरी में उल्लेखित नेल, मार्था व एमिली जॉन होल्ट की छात्राओं के नाम हैं।

13 फरवरी 1958 -

नेल को मैं अपने दिमाग से हटा ही नहीं पा रहा हूं। आज जब उसने मुझसे fractions की बात की, तो मुझे बहुत अजीब सा लगा। बच्चे अक्सर समझने की कोशिश करने से ही इन्कार कर देते हैं, यह तो मैं जानता था। पर, एक बार किसी बात को समझते-समझते, उसे उठाकर फेंक देना, ऐसा तो वे नहीं करते। या करते हैं ?

मुझे लगा कि नेल ऐसा ही कुछ कर रही है। बहुत बार उसने मेरे शब्दों को समझने की भरसक कोशिश की, और कई चरणों में उसने समझा भी कि मैं क्या कर रहा हूं। और बस जैसे ही मुझे लगता कि वह चरण दर चरण मेरी बात को पकड़ने ही वाली है, पूरी तरह समझने ही वाली है वो सिर हिला कर कह उठती "मुझे समझ नहीं आ रहा।" ये क्या माजरा है ? क्या फेल होने में किसी बच्चे का निजी स्वार्थ हो सकता है ?

मार्था मेरे साथ अंकों वाला खेल खेलते-खेलते कई बार इसी तरह व्यवहार करती है । वो समझना नहीं चाहती । मैं जो कहता हूं उसे सुनती नहीं है और फिर कहती है "मुझे कुछ पल्ले नहीं पड़ा- सब गड्डमड्ड हो रहा है ।"

इन बातों पर गौर करते हुए मेरे दिमाग में एक पुराना विचार फिर से जाग उठा- कि दो तरह के बच्चे होते हैं ।

एक वे - जो बस "सही उत्तर" निकालना चाहते हैं ।

दूसरे वे - जो विचार करते हैं उस समस्या के बारे में जिसका उन्हें समाधान करना है ।

"सही उत्तर" वाले बच्चे किसी भी तरह, एक छलांग में अपने लक्ष्य तक पहुंचने की कोशिश करते हैं और अगर एक छलांग में उन्हें "सही उत्तर" नहीं मिला तो वे पूरी तरह हतोत्साहित हो जाते हैं । उन्हें सूझता ही नहीं कि सही उत्तर पाने के लिए वे और क्या कर सकते हैं । जब कि समस्या पर विचार करने वाले बच्चे समाधान की खोज में लगे रहते हैं - एक छलांग में हतोत्साहित नहीं होते ।

बहुत से छोटे बच्चों को जब भी मैं यह कहते हुए सुनता हूं "मुझ में बुद्धि नहीं है" - तो मुझे बड़ा अचम्भा होता है। मैं सोचता था कि मन में ऐसी भावना कुछ बड़े होकर, किशोरावस्था में पनपती है । पर लगता है कि नहीं । बहुत शीघ्र ही इस भावना का पनपना शुरू हो जाता है ।

पढ़ते-पढ़ते कहीं मेरी निगाह अपने ही भीतर झांकने लगती है । क्या मेरे मन में भी यह ख्याल बहुत बचपन से आने लगा था कि मुझ में बुद्धि नहीं है ? वैसे आमतौर पर मैं बहुत बुद्धि वाली मानी जाती थी, इसलिए बचपन एक निश्चिन्त अंह में गुजरा - पर फिर भी, मुझे तो मालूम है कि कितने ही मौकों पर, किसी दूसरे व्यक्ति की क्षमता का सामना करते हुए मैं अन्दर से अपने आपको अचानक बहुत हीन और कम बुद्धि वाली महसूस करने लगती थी ।

फिर कहीं स्मृति में टटोल कर देखा, मैं क्या थी ? मैं समस्या का हल पाने के लिए, "सही उत्तर" पाने के लिए, झट छलांग लगाती थी, या समस्या का हल ढूंढने के लिए सोच विचार व तर्क करती थी ? "सही उत्तर" न पाने पर मैं हतोत्साहित और निष्क्रिय हो जाती थी और यह महसूस करती थी कि मुझ में बुद्धि नहीं है या कि कहीं दिमाग में, विचारों में प्रयत्न जारी रहता था ? आपको अपने बचपन के बारे में, स्कूली जीवन के दिनों के बारे में, क्या ऐसी कुछ-कुछ बातें याद आती हैं ?

फरवरी 18, 1958 -

"बुद्धि" एक पहेली है । हमें सुनने को मिलता है कि अधिकांश लोग अपनी बौद्धिक क्षमता का 10 प्रतिशत भी नहीं विकसित कर पाते; शायद नहीं - पर क्यों नहीं ? कुछ लोग कैसे अपनी बौद्धिक क्षमता का 20 प्रतिशत या 30 प्रतिशत तक उपयोग कर लेते हैं ?

जब इस समस्या से मैंने जूझना शुरू किया तो मैं सोचता था कि कुछ लोग जन्मजात दूसरों से ज्यादा चतुर व बुद्धिमान होते हैं । और इस बारे में कुछ खास किया नहीं जा सकता । कई मनोवैज्ञानिकों की भी यही धारणा है ।

अगर बच्चों से आपका संपर्क सिर्फ कक्षा तक सीमित है, तब आपको यह धारणा सही ही लगेगी । पर अगर आपका संपर्क बच्चों की बाकी जिन्दगी से भी है, उन्हें आप खेलते, काम करते, घर पर या बाहर कहीं देखें तो आप इस निष्कर्ष से बच के शायद ही निकल पाएं कि कई लोग कुछ समय की तुलना में अन्य समय ज्यादा चतुर और बुद्धिमान होते हैं । क्यों ? क्या कारण है कि एक बच्चा कुछ परिस्थितियों में तो बहुत बारीकी और चतुराई से ध्यान देता है, सोचता है, दिमाग लड़ाता है, विश्लेषण करता है - कुल मिलाकर बुद्धि से काम लेता है - और कक्षा में आकर वही बच्चा निरा मूर्ख बन जाता है ?

हमारी कक्षा का सबसे बेकार छात्र भी (मेरी पहचान का ही सब से बेकार छात्र) , कक्षा के बाहर की अपनी जिन्दगी में उतना ही परिपक्व, समझदार और रोचक व्यक्ति था जितना कि स्कूल का कोई और छात्र । फिर गड़बड़ क्या हो जाती है ?

कहीं जा कर तो उसकी बुद्धिमत्ता स्कूल के जीवन से विलग हो जाती है । कहां ? क्यों ?

पिछले साल मेरी कक्षा में बड़े खराब छात्र थे । मैंने जितने छात्रों को फेल किया उतना तो स्कूल के बाकी सब शिक्षकों ने मिलकर भी नहीं किया था । हालांकि मैंने हर संभव प्रयत्न किया था कि किसी तरह ये बच्चे निकल जाएं। हर परीक्षा के पहले हम एक अच्छा खासा "घोटा लगाओ" सेशन करते थे जिसे सभ्यता के नाते "पुनरावृत्ति कार्य" कहा जाता है । जब बच्चे फेल हुए तो हमने उनके उत्तरों की पुनः समीक्षा की, फिर सप्लीमेन्ट्री परीक्षा रखी जो कि हमेशा पहली परीक्षा की तुलना में सरल होती है - पर उसमें भी वे फिर से फेल हो गए ।

मुझे लगा कि इस समस्या का निदान मुझे आता है - वो है कि कक्षा के काम को जीवन्त और रुचिकर बनाया जाए, जिसमें बच्चे उत्सुकता और उत्साह से भाग लें सकें । और मैं कुछ हद तक कक्षा में ऐसा माहौल

बना भी पाया । कई बच्चे जो फेल होते थे - उन्होंने भी मेरी इन कक्षाओं को पसंद किया । बस, मुझे तो अपना रास्ता मिल गया था - बच्चों का भय दूर करो ताकि वे खुल के बता सकें जो उन्हें समझ में नहीं आता है - और फिर समझाते जाओ, समझाते जाओ जब तक कि उनकी समझ में न आ जाए। उन पर नियमित, लगातार दबाव बनाए रखो। यह सब मैंने किया । परिणाम ? जो कक्षा

आप भी कई बच्चों को मूर्ख और बुद्धिहीन मानते होंगे । क्या जॉन होल्ट की तरह आपको कभी यह देखने व अहसास करने का मौका मिला है कि किन्हीं अन्य परिस्थितियों में वही बेवकूफ बच्चे बहुत चतुराई और समझदारी से काम ले रहे हैं ?

यह वाक्य शायद आपके मुंह से भी निकला हो - "और कामों में तो तुम्हारा दिमाग खूब चलता है । पढ़ाई के नाम पर तुम्हारी अक्ल कहां घास चरने चली जाती है ?"

वाकई - इस वाक्य में आप स्वीकार कर रहे हैं कि इस बच्चे में "अक्ल" है - पर पढ़ाई के नाम पर अक्ल कहीं चली जाती है । आखिर क्यों ?

जॉन होल्ट ने जिस तरह इस समस्या को रखा है वह काफी चिन्ता का विषय है । मालूम नहीं आप की उस बात से सहमति होगी या नहीं - होल्ट कह रहे हैं कि उनके अथक परिश्रम का, कक्षा को जीवन्त और रूचिकर बनाने के उनके प्रयासों का, बच्चों के मन से भय और संकोच दूर करने की उनकी कोशिशों का, कोई मतलब नहीं है । इन सब तरीकों से "फेलर" बच्चे "फेलर" ही बने रहे ।

एक नजर देखें तो जॉन होल्ट के प्रयास बहुत सराहनीय थे । हम और आप कक्षा में बहुधा ऐसे ही प्रयास करने में अपनी बड़ी उपलब्धि मानते हैं ।

इस सब के बावजूद जब बच्चे फेल होते हैं तो निश्चय ही यह उनका दोष है - नहीं ?

शिक्षक और क्या करे ? कितना करे ?

पर होल्ट के दर्शन में बच्चे के फेल होने की जिम्मेदारी अन्ततः शिक्षक की है । दोष बच्चे में नहीं, शिक्षण के तरीके में है - यह होल्ट की दृढ़ मान्यता है । और यही मान्यता उसे बच्चों का बारीक अवलोकन करते रहने को प्रेरित करती है कि बच्चे कहां स्वयं मूर्ख हैं, कहां शिक्षण का तरीका उन्हें मूर्ख बना रहा है, और इस पूरे खेल में बच्चे बचने की कैसी रणनीतियां अपनाते हैं ।

के "अच्छे" बच्चे थे - वे अच्छे बने रहे, शायद पहले से कुछ ज्यादा अच्छे बन गए । पर जो "बेकार" छात्र थे, वे बेकार बने रहे, और कुछ शायद पहले से ज्यादा बेकार हो गए । अगर वे नवम्बर की परीक्षा में फेल हो रहे थे, तो वे जून की परीक्षा में भी फेल हो रहे थे । नहीं - इस समस्या का बेहतर समाधान होना चाहिए । ऐसा कुछ किया जाना चाहिए जिससे कि बच्चों को शुरू से ही "फेलर" होने से रोका जा सके ।

8 मई, 1958 -

एमिली ने एक बार microscope को mincopert लिखा । बहुत स्पष्ट था कि उसे microscope लिखना नहीं आता था, और उसने झट से बस कुछ तो भी उत्तर लिख दिया । और एक बार लिख दिया तो फिर उसने मुड़कर भी नहीं देखा, तनिक भी नहीं सोचा कि उसने जो लिखा है वो सही लग रहा है कि नहीं - कि कुछ और लिखना शायद ज्यादा सही हो ! मैंने कई दफा बच्चों में यह रणनीति देखी है - बस एक बार कुछ भी उत्तर दो फिर मुड़कर मत देखो - उफ ! बहुत खराब है । एमिली खास कर इस रणनीति के कई उदाहरण पेश करती रहती है । मैं चाहूंगा कि आप भी उनमें से कुछ उदाहरणों से वाकिफ होएं ।

एमिली के microscope को mincopert लिखने के कुछ दिनों बाद मैंने एक दिन श्यामपट पर mincopert लिखा । कक्षा में बच्चों ने पूछा - "यह क्या लिखा है ?" तो एमिली और एक और छात्र जो किकाफी होशियार है, ने कहा कि सर ने दरअसल microscope लिखा है । कक्षा में सब बच्चों को बड़ी हंसी आई । और हंसने में एमिली भी पीछे नहीं थी । वैसे एमिली के हाव-भाव, चेहरे के रंग से एकदम पता चल जाता है कि वह क्या सोच रही होती है । पर मेरे बहुत गौर करने के बावजूद मुझे उसके हाव-भाव में कहीं भी इस बात के लक्षण नहीं नजर आए कि उसे mincopert शब्द की रचयिता होने का जरा भी आभास हो । यहां तक कि वह जिस तरह हंस रही थी, खिल्ली उड़ा रही थी उससे तो लगता था कि वह किसी भी हालत में अपने आपको इतना बुद्धू नहीं मानती कि microscope को mincopert लिखे ।

आज उसने मुझे एक पुट्ठे पर कुछ चिपका कर दिखाया । उसके किसी दोस्त ने अखबार में से कुछ चुटकुले काट लिए थे और एमिली ने उन्हें एक पुट्ठे पर चिपका कर मुझे पढ़ने को दिए । पढ़ते-पढ़ते जब मैं आखिरी चुटकुले पर पहुंचा तो मैंने पाया कि एमिली ने गोंद चुटकुले वाली साइड पर लगा दी थी और पढ़ने वाली साईड पर समाचार का एक अंश था । मुझे आश्चर्य हुआ कि उसने चुटकुले चिपका दिये और देखा भी नहीं कि सब सही चिपके हैं कि नहीं । मैंने उससे कहा - "भई यह आखिर

वाला चुटकुला तो तुम्हें हमें समझाना पड़ेगा। हमें समझ में नहीं आ रहा।" मुझे लगा कि वह देखेगी और समझ जाएगी कि उसने भूल से गलत साइड चिपका दी है। मेरी हैरानी की सीमा नहीं रही जब उसने पुट्ठे को देखा और बड़ी बेफिक्री से कहा "सच बात तो यह है कि यह चुटकुला मेरी समझ में भी नहीं आया।" हद है। उसने देखा - और देखने के बावजूद वो यह बड़ी आसानी से स्वीकार करने को तैयार थी कि उसने एक निरर्थक चुटकुला चिपकाया है। यह संभावना ही उसके मन नहीं आई कि उसने भूल की है कि सही चुटकुला कागज के पीछे है जहां उसने गोंद लगा दी है।

कितना जरूरी है इस बच्ची के लिए कि वो जो करे वो "सही" निकले। "गलत" होना वो सह नहीं सकती। यह कल्पना करना भी उसके लिए असह्य है कि उसने भूल की होगी। अगर उसने गलत उत्तर दिया है, या भूल की है, जैसा कि वो अक्सर करती है तो वह उस बात को जल्दी से जल्दी भुला देना चाहती है। स्वाभाविक ही है कि वो कभी खुद को यह नहीं बता सकती कि उसने कुछ गलती की है - क्या यह काफी नहीं कि दूसरे उसको गलत साबित करते रहते हैं? जब उसे कुछ करने को कहा जाता है तो वह उस काम को बहुत जल्दी और डर के साथ करती है, और फिर उसे किसी ऊंची "सत्ता" को थमा देती है - और दो जादू के शब्दों "सही/गलत" के उच्चारण का इन्तजार करती है।

यह डर उसे दूसरी रणनीतियां अपनाने को मजबूर करता है, जो अन्य बच्चे भी कई बार अपनाते हैं। एमिली जानती है कि शिक्षक अक्सर ऐसे बच्चों से सवाल पूछते हैं जो कक्षा में ध्यान देते नहीं दिखते, या जिनके चेहरे से पता चलता है कि उन्हें समझ में नहीं आ रहा।

एमिली बहुत सुरक्षित महसूस करती है जब कक्षा में किसी प्रश्न के पूछे जाने पर वह जोर-जोर से हाथ उठा कर हिलाने लगती है, मानो "सही उत्तर" बताने के लिए वह मरी जा रही हो। यह और बात है कि उसे अक्सर उत्तर आता नहीं है, पर शायद उसे लगता है कि, ऐसा जताने में कि उसे उत्तर आता है, शिक्षक उससे प्रश्न नहीं पूछेंगे। यह भी मैंने गौर किया कि जब तक कक्षा में पहले से ही आधा दर्जन हाथ ऊपर न उठ गए हों, वो अकेले अपना हाथ भी नहीं उठाती।

पर कभी-कभी तो वो पकड़ी जाती है। सवाल का जवाब देने की उसकी बारी भी आती है। सवाल था - 48 का आधा कितना होता है? झट उसका हाथ ऊपर हो गया था। उसने हल्की फुसफुसाहट में कहा भी - 24। मैंने उससे कहा कि वह जोर से बताए, लोग सुन नहीं पाए हैं। उसके चेहरे पर शिकन पड़ने लगी, उठकर वह ऊंचे स्वर में बोली - "मैंने कहा 48 का आधा ..." और फिर बहुत हल्की फुसफुसाहट में- "24 होता है।" फिर भी बहुत से लोग नहीं सुन पाए थे। खीझ कर एमिली ने

कहा - ठीक है मैं चिल्ला कर कहे देती हूं । मैंने कहा- "हां, चिल्ला कर कह दो ।"
एमिली बहुत जताते हुए चिल्ला कर बोली- "सवाल था कि 48 का आधा क्या होता है । यही था न ?" मैंने सिर हिलाया- "हां" । और एक बार फिर बहुत ही हल्की फुसफुसाहट में उसने जवाब दिया "24" । मैं उसे यकीन न दिला सका कि उसने प्रश्न चिल्ला कर कहा था, उत्तर नहीं ।

वैसे, यह रणनीति अक्सर सफल ही होती है । हम शिक्षक आमतौर पर "सही उत्तर" सुनने को इतने उतावले होते हैं (जिससे हमें अपने अच्छे शिक्षण का प्रमाण हासिल होता है, आत्म संतोष मिलता है) कि बच्चे का कोई जवाब, जो "सही उत्तर" से मिलता-जुलता लगे - हमें झट आकर्षित कर लेता है और हम उसे अपनी तरफ से दोहरा कर, संतुष्ट होकर, आगे बढ़ जाते हैं । अतः उन छात्रों के लिए, जो सही उत्तर के बारे में पक्की तरह विश्वस्त नहीं हैं, "फुसफुसाना" सब से उचित रणनीति साबित होती है । सही हुआ तो शिक्षक अपने उतावलेपन में उसे "पास" कर ही देगा, गलत हुआ तो साफ सुनाई तो पड़ ही नहीं रहा । जैसे- अगर किसी बच्चे को पक्का नहीं कि किसी शब्द में a लिखना है या o तो वह ऐसा कुछ लिखेगा जो a भी लगे और o भी ।

बच्चे इस तरह की रणनीति में माहिर हो जाते हैं । एक बार हम संतुलन का खेल खेल रहे थे । कक्षा में एक मीटर स्केल टांगी थी । उसके एक सिरे पर कुछ भार रख दिया था । और स्केल को लॉक कर स्थिर कर दिया था । बच्चों को स्केल के दूसरे हिस्से में ऐसा भार रखना था जिससे कि स्केल बैलेन्स करे । जब एक बच्चा अपने हिसाब से सही भार चुनकर स्केल पर रख देता तो बाकी बच्चों को बताना था कि उनके अनुमान से स्केल बैलेन्स करेगा कि नहीं । फिर लॉक हटाने पर देखा जाता कि उनका अनुमान सही था या नहीं ।

एक बार जब एमिली की बारी आई तो उसने स्केल पर एक जगह भार रखा । बच्चों ने कहा कि यह बैलेन्स नहीं करेगा । जैसे-जैसे हर एक छात्र अपना मत देता गया एमिली का आत्मविश्वास कमजोर पड़ता गया । जब सब अपना मत दे चुके तो एमिली को लॉक हटाकर देखना था कि किसका अनुमान सही निकला । जब यह मौका आया एमिली बड़ी निश्चिन्त मुस्कान फेंकते हुए बोली "दरअसल, व्यक्तिगत रूप से मुझे भी नहीं लगता कि यह बैलेन्स करेगा ।"

एमिली ने अपने किए को नकार दिया, उसे भुलाने-मिटाने की कोशिश की । पीछे मुड़कर नहीं देखना चाहा । लिखित शब्दों में बयान नहीं कर सकता कि उसके चेहरे के हाव-भाव कैसे थे और उसकी आवाज

का लहजा कैसा था । उसने अपने आपको उस बेवकूफ इन्सान, जो भी वो हो, से बिलकुल अलग कर लिया था जिसने भार को इतनी गलत जगह स्केल पर रखा था । जब उसने लॉक हटाया और स्केल घूमता हुआ यहां वहां होने लगा तो एमिली के चेहरे का आत्मसंतोष देखते ही बनता था । बच्चे अपने दाव को सुरक्षित करने की कई कोशिशें करते हैं, पर एमिली जिस निर्लज्ज भाव से यह करती है उसका कोई जवाब नहीं ।

मैं अब समझ पा रहा हूं कि एमिली के काम के बारे में मैं गलत सोच रहा था । उसके अनुसार, उसके लिए, यह काम नहीं था कि उसे microscope ठीक लिखना या स्केल को सही बैलेन्स करना है । उसके अनुसार उसके मन में कुछ इस तरह की बात रहती होगी - "ये शिक्षक मुझसे कुछ करवाना चाहते हैं । मुझे बिलकुल नहीं समझ आ रहा कि ये क्या करवाना चाहते हैं और खुदा के लिए, क्यों करवाना चाहते हैं । पर मैं कुछ कर देती हूं - तब शायद ये मुझे चैन लेने दें ।"

बच्चों की ये रणनीतियां देखकर मुझे एक कविता याद आती है -

एक सुनसान अकेली सड़क पर चलने वाले की तरह/वो भय और आतंक में चलता है/और एक बार एक तरफ चलना शुरू करने पर/ चलता जाता है / चलता जाता है/ सिर घुमाकर नहीं देखता/जरा भी /

क्योंकि वो जानता है···कि··
एक भयावह राक्षस
उसके ठीक पीछे दौड़ा आ रहा है···

क्या इसी तरह बहुत से बच्चे जीवन भर का सफर तय करते हैं?

भावानुवाद-रश्मि पालीवाल

प से पतंग या पढ़ाई ?

रेल का सफर था । बीकानेर से दिल्ली की ओर गाड़ी तेजी से भाग रही थी । मेरे सामने की सीट पर बैठा एक चुलबुला सा बच्चा पुस्तक खोले कुछ-कुछ पढ़ने की कोशिश कर रहा था । प्राथमिक शाला की किताब तो जरूर थी परन्तु वह बच्चा करीब ढाई-तीन साल की उम्र का ही दिखता था । "अ" से अनार, "आ" से आम झट से पढ़ लेता और उसके पिता अत्यन्त गर्व से मेरी ओर देखते । अजीब तो नहीं लगा, क्योंकि वास्तव में बच्चों का सीखना मां-बाप के ऊपर काफी कुछ निर्भर करता है ।

पुस्तक के पन्ने उलटते गए और गाड़ी की तेज रफ्तार की तरह वह पुस्तक में ध्यान रखे आगे बढ़ता गया । जैसे ही "प" से पतंग वाला पन्ना पलटा बच्चे का ध्यान गाड़ी की खिड़की से बाहर दिखती, आसमान में उड़ती रंग-बिरंगी पतंग पर जा पड़ा । बच्चे की आंखें सितारे की तरह चमक उठीं, वह झट से बोला, वो··· वो···वो रही पतंग लग रहा था उसने किताब में लिखी चीज को वाकई में समझ लिया है । वह खुशी से उछल पड़ा और अपने पिताजी को अपनी ढूंढी वस्तु दिखाने का इशारा किया । पिताजी की नजरें किसी पत्रिका में खोई हुई थीं अत: वह झल्ला कर बोले - "पिंटू···बातें बाद में करना पहले पढ़ाई करो।"

पूनम बत्रा

सरकार का आदेश है
कृपया बच्चे पतंग न उड़ाएं
घरौंदे न बनाएं
कागज की नाव न तैराएं
सरकार का आदेश है
बच्चे
बच्चे न रहें।

- राजेन्द्र उपाध्याय

बाल वैज्ञानिक संशोधन - कक्षा छह

प्रमुख परिवर्तन

अध्याय	परिवर्तन	कारण
खेल खिलवाड़	हैंडलैंस से देखने के लिए कुछ चित्र जोड़ गये हैं।	ताकि बच्चे हैंडलैंस के प्रयोग का ज्यादा मजा ले पाएं और उनमें अन्य वस्तुएं देखने की, बारीक अवलोकन करने की जिज्ञासा उत्पन्न हो।
	माचिस का सूक्ष्मदर्शी बनाने की विधि बदल दी गई है।	यह अधिक सरल है व इसे बनाने में बच्चों को उपलब्धि का अहसास होगा। पहले वाले मॉडल में दिक्कत यह थी कि वह बन नहीं पाता था और बच्चे कई बार हतोत्साहित हो जाते थे।
समूह बनाना सीखो	अध्याय को चीज़ों में विभिन्नता के आधार पर शुरू किया गया है।	यह लगता था कि बच्चे वस्तुओं के गुणधर्म नहीं पहचान पाते। समानताएं पहचानना, ऐसा लगता है, ज्यादा मुश्किल है बजाय अन्तर पहचानने के। अन्तर पहचानते हुए भी तो बच्चे गुणधर्म ही पहचान रहे हैं। एक बार वे वस्तुओं के अधिक से अधिक गुण पहचानने लगें तो समूह बनाना आसान क्रिया है।
	चीज़ों के गुणधर्म चुनने के ज्यादा अभ्यास हैं।	
	अंत में समूह को लेकर एक रोचक अभ्यास जोड़ा गया है। यह बाजार के पुनर्गठन से सम्बन्धित है।	समूह बनाना एक क्रिया है परन्तु समूहीकरण किन्हीं उद्देश्यों से किया जाता है। यदि समूहीकरण करते वक्त उद्देश्य का ध्यान न रखा जाये तो निरर्थक समूह बनते हैं। इसी बात को उभारने के लिये यह अभ्यास है।
हमारी फसलें	इस अध्याय को दो भागों में बांट दिया गया है। पहले भाग में खरीफ व दूसरे भाग में रबी की फसलों का अध्ययन किया जाएगा।	चूंकि इस अध्याय को वास्तव में दो ही हिस्सों में करना होता है। भाग दो को करते हुए यह ध्यान रखना होगा कि उसमें भाग एक की जानकारी का भी उपयोग हो।
समूह में समूह उपसमूह बनाना	उदाहरणों को बदलने के अलावा कोई प्रमुख परिवर्तन नहीं।	

बल और भार	अध्याय में कई प्रयोग बदल दिये गये हैं। साइकिल पम्प, स्केल पर ईंट रखना आदि प्रयोग निकाल दिये गये हैं। रबर के छल्ले के खिंचने के प्रयोग से भार का आभास देने की कोशिश है।	
पोषण - 1	भोजन और पाचनक्रिया मूल-अध्याय के दो हिस्से कर दिये गये हैं - पोषण - 1 व पोषण - 2 पोषण - 1 में जन्तुओं के पोषण की बात है।	जन्तुओं और पौधों के पोषण में बुनियादी अन्तर है इसलिये इन्हें अलग-अलग करना ही उचित है।
	प्रोटीन व वसा का परीक्षण जोड़ दिया है।	पहले भोजन में मात्र मण्ड का परीक्षण ही किया जाता था।
	मण्ड और प्रोटीन को अलग-अलग करने वाला प्रयोग निकाल दिया गया है।	काफी समय खर्च होता था।
	कुपोषण पर काफी जानकारी जोड़ी गई है। कुपोषण से निपटने के सरल उपाय भी दिये गये हैं। संतुलित भोजन पर ज्यादा विस्तार से चर्चा की गई है।	कुपोषण एक सामाजिक समस्या है व बच्चों के पर्यावरण का अंग है। भोजन की बात करते हुए उसकी चर्चा आवश्यक है।
बीज और उनका अंकुरण	अध्ययन के लिये बीजों में संख्या कम कर दी गई है।	हरेक वर्ग का प्रतिनिधि बीज ले लिया गया है।
	अंकुरण के लिये आवश्यक परिस्थितियों व अंकुरण के प्रकार के प्रयोग जोड़ दिये गये हैं।	इनको जोड़ने से बीजों का अध्याय पूर्ण हो जाता है।
विद्युत - 1	सेल होल्डर की जगह रबर के छल्ले, स्विच व बल्ब होल्डर में नये डिजाइन	फिर सस्ता व स्थानीय रूप से उपलब्ध करवाने की दृष्टि से।

	का प्रयोग किया गया है।	
	बल्बों को समान्तर व श्रेणी क्रम में जोड़ने का प्रयोग शामिल किया गया है।	
जड़ और पत्ती	सातवीं कक्षा से यह अध्याय छटी कक्षा में लाया गया है।	सातवीं में विषयवस्तु कम करने के उद्देश्य से।
गणक के खेल	अध्याय को ज्यादा विस्तृत बनाया गया है। पुराने अध्याय के अलावा इसमें जोड़ बाकी व गुणा के सरल अभ्यास जोड़े गये हैं।	बच्चों में स्थानीय मान व दशमलव की समझ को और पुख्ता बनाने की दृष्टि से ऐसा किया गया है। जैसा कि सभी को मालूम है कि सर्वेक्षणों से ज्ञात हुआ था कि दशमलव में बच्चे बहुत कमजोर हैं।
	घनश्याम की कहानी अध्याय में ही दे दी गई है।	
दूरी नापना	डिवाइडर से वक्र रेखा की लम्बाई नापने वाला अभ्यास निकाल दिया गया है। शेष अध्याय वैसा ही है।	
घट-बढ़ और सन्निकटन	रबर की लम्बाई की जगह खिड़की की ऊंचाई के आंकड़ों के आधार पर अध्याय विकसित किया गया है।	इससे त्रुटियों की (प्रायोगिक) की संभावना कम हो गई है।
	विद्यार्थियों द्वारा स्वयं टेबिल की नापें लेकर घट-बढ़ की चर्चा वाला प्रयोग जोड़ा गया है।	इससे विद्यार्थी स्वयं घट-बढ़ का अहसास कर पायेंगे। इसके आधार पर के लिये गये आंकड़ों की वैधता पर भी भरोसा कर पायेंगे।

	औसत निकालने की विधि ज्यादा विस्तार से समझाई गई है व यह भी समझाया गया है कि औसत नाप का सन्निकटन क्यों जरूरी है।	
	स्तम्भालेख व बहुसम्मत मान वाला हिस्सा निकाल दिया गया है।	
	सन्निकटन करने की विधि ज्यादा विस्तार में अलग से दी गई है।	क्योंकि लगता था कि सन्निकटन करने में भ्रम रह जाता है।
पृथक्करण -	भूमिका में पृथक्करण की सामान्य जीवन में उपयोग की विधियों पर ज्यादा चर्चा है। इनके वैज्ञानिक आधार समझने की कोशिश की गई है। छानना - इसे अलग से एक विधि के रूप में दिया गया है, व विस्तार से समझाया गया है।	
	आसवन व ऊर्ध्वपातन निकाल दिये गये हैं। इन्हें संभवत: सातवीं में रखा जायेगा।	इनके लिए ज्यादा प्रायोगिक कौशल की आवश्यकता होती है। छठी के विद्यार्थी की बजाय सातवीं के छात्र इन्हें ज्यादा आसानी से कर पायेंगे।
संवेदनशीलता -	कई नये प्रयोग जोड़े गये हैं व कुछ पुराने प्रयोग नये ढंग से दिये गये हैं: स्पर्श के प्रति संवेदनशीलता में हाथ के बजाय पैर पर प्रयोग। स्वाद के प्रति संवेदनशीलता के प्रयोग को बदला गया है।	पैरों में विभिन्न स्थानों की संवेदनशीलता में अन्तर ज्यादा स्पष्ट होता है।

एक तो हर बार स्वाद का घोल लगाने के बाद जबान साफ करने का निर्देश है और दूसरा घोल लगाने का निश्चित क्रम (जैसे पहले मीठा, फिर खट्टा आदि), तोड़ दिया गया है। अब घोल बेतरतीब तरीके से लगाये जायेंगे। कभी कभी सिर्फ पानी भी लगाया जाएगा।

क्योंकि एक बार स्वाद पूरी जबान पर फैल जाने के बाद अन्तर कर पाना मुश्किल होता था।

क्योंकि एक ही स्वाद का घोल लगातार लगाने पर बच्चे को भ्रम हो जाता था। कई बार वास्तव में स्वाद न आने पर भी हाँ कर देते थे। बेतरतीब क्रम होने से यह समस्या दूर हो जाएगी।

आंखों से संबंधित प्रयोग जोड़ा गया है।

इस वर्ष कक्षा-6 की बाल वैज्ञानिक का संशोधित संस्करण प्रकाशित हुआ है। इस संशोधन के साथ ही पूरी बाल-वैज्ञानिक शृंखला के संशोधन का काम शुरू हो गया है। अगले वर्ष कक्षा-7 और उसके अगले वर्ष कक्षा-8 की बाल-वैज्ञानिक पुस्तकों के संशोधित संस्करण प्रकाशित होंगे। कक्षा-6 की पुस्तक में जो प्रमुख संशोधन किये गये हैं, उनका ब्यौरा यहाँ दे रहे हैं। इस संशोधन के बारे में और अगली कक्षाओं की पुस्तकों के संशोधन के लिए आपके जो भी विचार / सवाल हों जरूर व्यक्त करें।

सवालीराम

पृथ्वी गोल क्यों है ?

विजय सिंह पटेल, चांदौन

00 (क) हमें कैसे पता चलता है कि पृथ्वी गोल है ? "पृथ्वी गोल क्यों है" ? इस प्रश्न का तात्पर्य यह भी हो सकता है कि "हम किन तथ्यों के आधार पर कहते हैं कि पृथ्वी गोल है ?" यहां दोनों प्रश्नों के उत्तर दिये गए हैं । इस प्रश्न (क) का उत्तर प्राथमिक/माध्यमिक स्तर की भूगोल की पुस्तकों में उपलब्ध है, अत: संक्षेप में दिया जा रहा है ।

ऐसे कई तथ्य हैं जिनसे पता चलता है कि पृथ्वी वास्तव में गोल है, और बहुत बड़ी होने के कारण हमें यह समतल

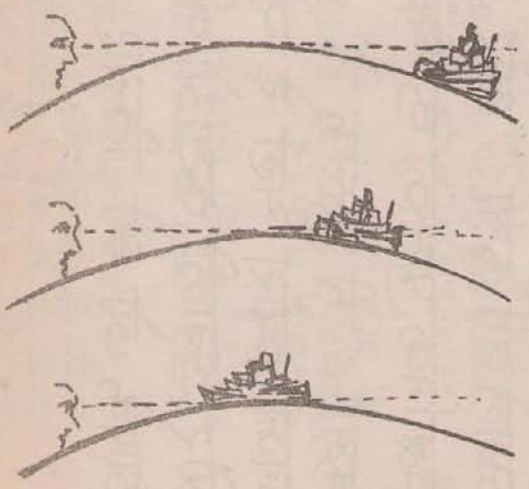

प्रतीत होती है । उदाहरणस्वरूप, यदि हम समुद्र के तट पर खड़े होकर किसी जहाज को हमारी ओर आते देखें, तो पहले हमें उसकी चोटी दिखाई देती है, फिर बीच का हिस्सा और अन्त में नीचे का भाग दिखाई देता है । इस अवलोकन को हम पृथ्वी की गोलाई के आधार पर समझ सकते हैं । चित्र देखो । याद रखना कि प्रकाश सीधी रेखा में गमन करता है ।

इस प्रकार के अवलोकन लोग सदियों से करते आए हैं । लगभग चार सौ साल पहले यूरोप के कुछ नाविक एक स्थान से एक ही दिशा में चलकर पूरी पृथ्वी की परिक्रमा करके वापस अपने स्थान पर पहुंचे । इससे यह सिद्ध हुआ कि पृथ्वी गोल है । वैसे आज हमें इन पुराने सबूतों की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि आजकल अंतरिक्ष यात्री अंतरिक्ष से पूरी पृथ्वी को देख सकते हैं । उनके अवलोकनों से तथा चित्रों से यह स्पष्ट है कि पृथ्वी गोल है । वास्तव में यह ठीक गोलाकार या गेंद की तरह नहीं है, बल्कि उत्तर और दक्षिण में थोड़ी दबी हुई है । यानि यह समझो कि इसका आकार सन्तरे की तरह है ।

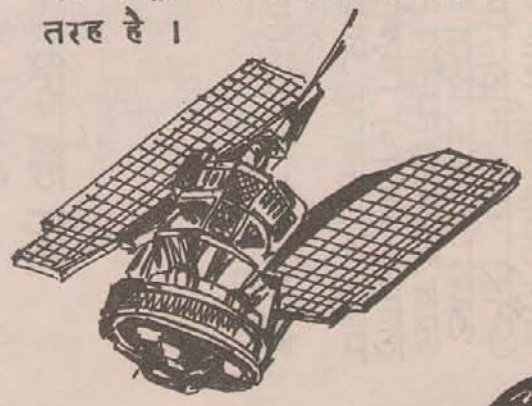

0 (ख) पृथ्वी गोल क्यों है ?

00 पहली बात तो यह है कि केवल पृथ्वी ही नहीं, बल्कि लगभग सभी आकाशीय पिन्ड गोल हैं । सूर्य और चन्द्रमा का गोल आकार तो सामान्य अनुभव की बात है । वैज्ञानिकों ने दूरबीनों से ग्रहों तथा तारों के आकार भी देखे हैं । कुछ पिंडों यथा उल्कापिंड को छोड़कर लगभग सभी गोल हैं । अत: यह सोचना स्वाभाविक है कि इन सब के गोल होने के पीछे एक ही कारण है ।

गुरुत्वाकर्षण के बल के कारण ही ऐसा होता है । जैसा कि न्यूटन ने सबसे पहले समझा था, इस ब्रह्माण्ड में प्रत्येक वस्तु प्रत्येक दूसरी वस्तु को अपनी ओर आकर्षित करती है - खींचती है । यह बल वस्तुओं में पदार्थ की मात्रा पर निर्भर करता है । पदार्थ की मात्रा जितनी अधिक होती है, आकर्षण का बल उतना अधिक होता है । इस बल के कारण न केवल एक वस्तु दूसरी वस्तु को अपनी ओर आकर्षित करती है, बल्कि एक ही वस्तु का प्रत्येक खंड अन्य खंडों को अपनी ओर आकर्षित करता है । अत: बहुत बड़े वस्तुपिंडों के आकार गुरुत्वाकर्षण के बल के द्वारा ही निर्धारित होते हैं ।

परन्तु यह बल पृथ्वी को तथा अन्य पिंडों को गोल आकार कैसे प्रदान करती है ? यह समझने के लिए हमें पृथ्वी के इतिहास के बारे में कुछ जानना होगा । वैज्ञानिकों ने यह निर्धारित किया है कि किसी समय पृथ्वी द्रव पिघली हुई अवस्था में थी । यह कैसे पता चला, यह

एक बड़ी रोचक कहानी है । इसके बारे में हम तुम्हें किसी अगले अंक में बतायेंगे । यह समय आज से करोड़ों साल पहले था । इस द्रव का प्रत्येक भाग प्रत्येक दूसरे भाग को अपनी ओर आकर्षित कर रहा था । अत: द्रव ऐसा आकार ग्रहण करना चाहता था जिसमें उसका प्रत्येक भाग अन्य भागों के अधिक से अधिक पास रह सकता हो । गोल आकार ही वह आकार है जिसमें पिंड के कणों की औसत आपसी दूरी सबसे कम होती है । जैसा कि तुम जानते हो, द्रवों का आकार आसानी से परिवर्तित किया जा सकता है । अत: पिघला हुआ वस्तुपिंड गोल आकार में ढल गया । समय के साथ-साथ पृथ्वी ठंडी होती गई और द्रव से ठोस बन गई । ठोस वस्तु का आकार आसानी से बदला नहीं जा सकता । अत: पृथ्वी का गोल आकार बना रहा । यही कारण है कि आज पृथ्वी गोल है ।

●

सवालीराम
द्वारा, संयुक्त संचालक, लोक शिक्षण
नर्मदा संभाग, होशंगाबाद 461001

चमगादड़

चमगादड़ को आमतौर पर ऐसा पक्षी माना जाता है जो अजीब है । उसके साथ कई मजेदार बातें जुड़ी हैं । इसके भोजन लेने, देखने की क्षमता से लेकर शरीर से बेकार पदार्थों को बाहर फेंकने तक के बारे में कई भ्रांतियां हैं । पिछले कुछ वर्षों से बच्चों ने सवालीराम से चमगादड़ के बारे में कई सवाल पूछे हैं । इनमें से कुछ के नाम और उनके द्वारा पूछे गए सवालों के आधार पर चमगादड़ के बारे में यह जानकारी इकट्ठी की गई है ।

आजकल 2000 से भी अधिक प्रकार के चमगादड़ पाए जाते हैं जो 800 प्रजातियों में समाहित हैं । पृथ्वी पर इनके सबसे पुराने अवशेष आज से लगभग 6 करोड़ साल पहले के मिले हैं । चमगादड़ पृथ्वी पर ध्रुवों के अलावा लगभग हर जगह मिलते हैं । चमगादड़ों का भोजन भी अलग-अलग प्रकार का होता है । ज्यादातर प्रकार के चमगादड़ कीड़े खाते हैं । कुछ प्रकार के चमगादड़ फल व फूलों के परागकण खाते हैं । कुछ प्रकार के चमगादड़ मछलियां खाते हैं, कुछ अन्य प्रकार के चमगादड़ छोटे-छोटे जानवरों को खाते हैं ।

दक्षिण और मध्य अमेरिका में मिलने वाली वैम्पायर चमगादड़ आदमियों और पशुओं का खून चूसती हैं । इस के जबड़े में कुछ बहुत तेज दांत होते हैं जिनसे वह पशु की चमड़ी में छेद कर लेते हैं । छेद करने के बाद अपनी लम्बी जबान से खून को अपने अन्दर खींच लेते हैं । उनके पाचन तंत्र में खून को पचाने की विशेष व्यवस्था होती है । वैम्पायर चमगादड़ सिर्फ खून पर ही जीवित रहती हैं । इनका खून चूसने का तरीका इतना विकसित है कि पशु सोता ही रह जाता है और यह खून चूस लेती हैं । ऐसा सोचा जाता है कि वैम्पायर चमगादड़ की लार में कुछ ऐसे रासायनिक पदार्थ होते हैं जो पशुओं के खून को जमने से रोकते हैं और कुछ ऐसे पदार्थ भी होते हैं जो उसे पीड़ा नहीं महसूस होने देते । लेकिन इस प्रकार की चमगादड़ सिर्फ दक्षिण और मध्य अमेरिका में ही मिलती है । भारत में मिलने वाली विभिन्न प्रकार की चमगादड़ में कोई भी इस चमगादड़ के करीब की नहीं है ।

चमगादड़ पक्षी समूह में नहीं है और यह स्तनधारी समूह में आती है । यह एक मात्र स्तनधारी पशु है जो उड़ सकता है । बहुत से अन्य स्तनधारियों की तरह चमगादड़ अंडे नहीं देती और सीधे बच्चे देती हैं । इसके उड़ने का तरीका भी पक्षियों से भिन्न है । चमगादड़ों के पंख खींची हुई चमड़ी से बने होते हैं और पक्षियों के परों से काफी कम सक्षम होते हैं । चमगादड़ के हाथों के दूसरी से पांचवी अंगुली के बीच में चमड़ी {खाल} एक चादरनुमा शक्ल में

खिंची रहती है । इनके हाथों की चौथी अंगुली अपेक्षाकृत काफी लम्बी होती है । चमगादड़ की उड़ान में पक्षियों की अपेक्षा काफी झटके दिखते हैं चूंकि यह पक्षियों की तरह परों में थोड़ा बहुत परिवर्तन करके उनमें से कुछ को मोड़ कर या शरीर से उनका कोण बदल कर अपनी उड़ान को सीधा नहीं रख सकते ।

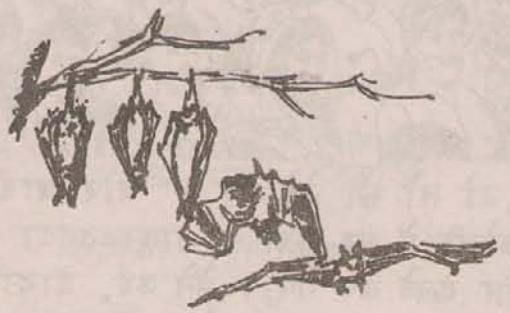

चमगादड़ के दोनों पैर पकड़ कर लटकने के लिए विशेष रूप से विकसित होते हैं और गुफा की छत की थोड़ी बहुत उबड़-खाबड़ सतह का भी वह लटकने के लिए इस्तेमाल कर सकते हैं ।

चमगादड़ आंखों से देख सकता है और अन्धा नहीं होता । कुछ प्रकार के चमगादड़ तो सिर्फ आंखों से देख कर ही आगे आने वाले रास्ते का अंदाजा लगाते हैं । दिन में चमगादड़ डर के मारे नहीं निकलते । इस समय बाज, चील आदि शिकार की खोज में उड़ रहे होते हैं और चमगादड़ इनका भोजन बन सकते हैं । चमगादड़ के उड़ने में मदद करने वाले अंग भी इतने विकसित नहीं होते कि वह इनसे बेहतर तरह से उड़कर अपनी रक्षा कर सकें । इस लिए ही सामान्य तौर पर चमगादड़ दिन में नहीं निकलते और देर शाम से ही शिकार शुरू करते हैं । फल खाने वाले कुछ चमगादड़ लेकिन दिन में ही निकलते और भोजन करते हैं । फल खाने वाले इन चमगादड़ों की आंखें बड़ी होती हैं । इन आंखों से यह रात को या कम रोशनी में भी देख सकते हैं । इस लिए यह धारणा कि चमगादड़ अन्धे होते हैं और इनकी देख पाने की क्षमता कुछ कमजोर होती है । कमजोर आंखों वाले चमगादड़ ध्वनि तरंगों का इस्तेमाल कर आस-पास की चीजों का जायजा लेते हैं । इसके बारे में ज्यादा जानकारी बाद में पहले एक और मजेदार तथ्य, कुछ फल खाने वाले चमगादड़ गुफाओं में इधर-उधर जाने के लिए तो इन तरंगों का इस्तेमाल करते हैं परन्तु सामान्य तौर पर आंखों का ही इस्तेमाल करते हैं । इनमें से एक चमगादड़ जीभ के इस्तेमाल से खट-खट की आवाज निकालता है । इस आवाज को हम सुन भी सकते हैं ।

सामान्य तौर पर चमगादड़ हमारी श्रवण सीमा से ज्यादा आवृत्ति की तरंगों को लगातार नहीं फेंकते । यह तरंगें छोटे-छोटे समूहों में फेंकी जाती हैं । यानी कुछ देर तक तरंग फेंकी फिर नहीं और फिर तरंग फेंकना शुरू ।

चमगादड़ मानव को सुनाई देने वाली तरंगों का इस्तेमाल वस्तुओं के स्थान का पता लगाने के लिए नहीं करते । यह तरंगें खतरे में, शिकार करते समय, लड़ते समय आवाज के रूप में उपयोग होती हैं ।

हमरे गांव जमनिया में सरकार द्वारा पंचायत को टी·वी· मिली । हमरे गांव में नई-नई टी·वी· आई थी । गांव के सब लोग टी·वी· देखवे जा रहे थे । ठाकुर दद्दा ने कई (कहा), "अरे भइया भगवान बचाए टी·बी· से ।"

मैंने कई, "दद्दा, जा बा टी·बी· नहीं है । बा टी·बी· तो रोग है । टी·बी· रोग में तो छिंदवाड़ा या पाढर की अस्पताल देखवे जाने पड़त है । जा टी·वी· में तो नाटक, कहानी, सिनेमा, समाचार आदि शिक्षा की मुतकी सारी (बहुत सी) अच्छी-अच्छी चीजें दिखात हैं ।"

फिर जैसे-तैसे दद्दा-बऊ (दादी) और कुछ लोग चौधरी जी की अटरिया में टी·वी· देखवे गए । अटरिया में इत्ती भीड़ हती का "राम तेरी आशा" (बहुत अधिक आदमी थे)।

सात बजे टी·वी· चालू भई । टी·वी· में शेर दहाड़त आ गओ । फिर का था भइया आदमी घबड़ा मरे । एक मोड़ा (लड़का) ने कई (कहा), "ओ, मेरी बाई, जो तो खा जेहे री ।" और बाई की ओली में लुक गओ । ठाकुर दद्दा सुई शेर देखके कप गए । मैंने कई, दादाजी वो सच्ची का शेर नहीं हे । तुम टी·वी· में चित्र देख रहे हो । तब दद्दा को जी में जी आओ (शांति हुई)।

जितेन्द्र और श्रीदेवी को मिलन देखकर तो सबने आँखें मूंद लई । "ओ मेरी दईया ! जो कित्तो बेसरम है, जाहे सरम नहीं लगे । इत्ते आदमी बैठे हैं और जाने बिचारी बा मोड़ी लड़की को हाथ पकड़ लओ ।" पानी गिरने का चित्र देखकर तो ठाकुर दद्दा चिल्ला पड़े - "भइया हमरो तो खिरान (खलिहान) में गल्लो (अनाज) रखो है ।" और दौड़ के अटरिया से बहार पहुंच गए । बाहर जान के चकक्क (आश्चर्य से) देखत रहे । "जो का, अबे तो गेल (रास्ते) में से पानी बह रओ थो, अब तो बिल्कुल नहीं दिखा रओ ।"

ठाकुर दद्दा की बातें सुनके हम खूब हंसे और घर आ गए ।

जितेन्द्र भार्गव, निभौरा (बनखेड़ी)

हाय री शिक्षा

दबई गयो शिक्षक
रहियो निरीक्षक
मरी गई शिक्षा
बची रे परिक्षा

मोड़ी लाचारो
मोड़ा बेचारो
पढ़ि - पाढ़े गयी रे
पढ़ि - पढ़ि गयो रे
गये रे मारो

रटै - रटै तोता
बनो मेरो पोता
खूब मार खवायें
रोज घर आये
आयो मेरो पोता

खूब पढ़ी - खूब पढ़ी
पढ़ी - पढ़ी गये रे
गोफन फिकाबो
गिनती सिखाबो
बक्खर फिकाबो
अक्खर सिखाबो
पढ़ि - पढ़ि गयी रे
पढ़ि - पढ़ि गयो रे
गये रे मारो

दबई गयो शिक्षक
रहियो निरीक्षक
मरी गई शिक्षा
बची रे परिक्षा
मोड़ी लाचारो
मोड़ा बेचारो
पढ़ि - पढ़ि गयी रे
पढ़ि - पढ़ि गयो रे
काय रे मारो.

सुबीर शुक्ला

भाषा क्या है ?

भाषा क्या है? यह सवाल काफी उलझा हुआ है । यदि संदेश दूसरे व्यक्ति तक पहुंचे यही भाषा है, तो क्या हर गतिविधि जिसमें एक सार्थक संदेश दिया जा रहा हो, उसे हम भाषा कह सकते हैं ? क्या फिर ट्रैफिक की बत्तियां भी ? ट्रैफिक की बत्तियां चौराहों या सड़कों के मिलन स्थान पर इस्तेमाल होती हैं, वाहन चलाने वालों तक संदेश भेजने के लिए ।

इन बत्तियों में एक निश्चित क्रम में कुछ समय बाद एक जलती है, फिर दूसरी । एक समय में एक सड़क से ट्रैफिक बत्तियों तक आने वाले वाहनों को अपने आगे जाने की दिशा के अनुसार एक ही बत्ती जलती दिखती है । इन के जलने पर निम्न संदेश मिलते हैं -

इसी तरीके को आगे बढ़ाते हुए हम दो बत्तियों को मिलाकर संदेश दे सकते हैं जैसे -

लाल	- संतरी	=	आगे खतरा है ।
संतरी	- हरी	=	आगे रास्ता साफ है ।
हरी	- लाल	=	आगे ढलान है ।

तीनों बत्तियों को एक साथ जला कर भी एक बात कही जा सकती है ।
लाल-हरी-संतरी- आगे रास्ता बंद है ।

इस प्रकार 3 मूल संकेतों को मिलाकर हम कुल-7 संकेत ही दे सकते हैं, इससे अधिक नहीं ।

क्या भाषा पर भी हम कोई ऐसी सीमा लगा सकते हैं ? क्या हम कह सकते हैं कि हिन्दी में केवल 500 या 1000 बातें ही कही जा सकती हैं ? यदि हम ऊपर वाले उदाहरण में बत्तियों की संख्या बढ़ा भी दें तो भी संदेशों की संख्या सीमित रहेगी ।

यदि बत्तियों की संख्या हम 10 कर दें, और संदेश भी एक या दो बत्तियों से देना हो तो कुल संदेशों की संख्या 55 रहेगी । किसी भी भाषा पर इस तरह की सीमा लगाना संभव नहीं है ।

पशु-पक्षियों की बात ही लें । जिस किसी ने भी गाय, कुत्ते, बिल्ली, चिड़िया, चींटी, मधुमक्खी आदि को ध्यान से देखा है, वह जानता है कि इन सबका भी बात-चीत करने का अपना ढंग होता है । इस भाषा का माध्यम कुछ भी हो सकता है - बोलना, गाना, देखना, सूंघना या छूना । कुछ पक्षी अपनी मां की चोंच पर विशेष

किस्म से प्रहार करके खाना मांगते हैं । इस प्रकार मधुमक्खियां विशेष प्रकार के नृत्य से यह बताती है कि मधु किस दिशा में उपलब्ध है । और पक्षी तो अपने गानों के सहारे बहुत कुछ कहते प्रतीत होते हैं ।

लेकिन अभी तक के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि इन सभी में संकेत और संदेश में एक सीधा और सरल संबंध होता है । पशु-पक्षी शायद सीमित मूल संदेशों को मिला-जुला कर नित्य नये संदेश नहीं बना सकते और इस प्रकार वह एक सीमित संख्या में ही संदेश दे सकते हैं ।

ट्रैफिक की बत्तियों और पशु-पक्षियों के उदाहरण में एक ही समानता है-वह है संदेशों के सीमित होने की । इन दोनों में बहुत से अंतर हैं, उदाहरण के लिए ट्रैफिक की बत्तियों को मालूम नहीं वह क्या कह रही है, वह हर परिस्थिति में एक निश्चित अंतराल के बाद वही संदेश देगी, आदि-आदि । यानी किसी ट्रैफिक लाइट के लिए यह बताया जा सकता है कि वह एक घन्टे पांच मिनट 20 सेकेन्ड के बाद क्या संदेश दे रही होगी लेकिन पशु-पक्षियों के बारे में यह नहीं बताया जा सकता ।

कुछ लोगों ने चिम्पेन्जी को अपने ही बच्चों की तरह पाला और उन्हें भाषा सिखाने की कोशिश की । भाषा-वैज्ञानिक साहित्य में वाशो और सारा नामक दो चिम्पेन्जी का अक्सर जिक्र आता है । इन्हें मानवीय भाषा सिखाने की काफी कोशिश के बाद 50-60 संदेश आ गए थे । इनकी क्षमता नित्य नये संदेश बनाने की नहीं हो पाई । इसके आधार पर अभी यह माना जाता है कि नयी-नयी परिस्थितियों के लिए नये-नये वाक्य, नये-नये भाव, रचना सिर्फ मानव ही कर सकता है । मानव यह

काम कैसे करता है आइये इसे समझने की कोशिश करें ।

संकेतों के संदर्भ में हम आगे बढ़ें तो कह सकते हैं कि व्याकरण के गिने-चुने नियमों के अनुसार असंख्य वाक्यों का निर्माण करना मानवीय भाषा का एक पहलू है । हम अपनी जरूरत के अनुसार व्याकरण के नियमों में बँधे नित नये वाक्य बना सकते हैं । हमारी अपनी भाषा में सामान्यत: हमारा कोई वाक्य गलत नहीं होता और अगर हो भी तो हम उसे ठीक करने की क्षमता रखते हैं ।

मानवीय भाषा में कौन सी ऐसी बात है कि किसी भी सामान्य इंसान का भाषाई भन्डार किसी भी परिस्थिति में मार नहीं खाता । हम नित-प्रतिदिन कैसे नई-नई बातें समझते और कहते हैं ?मानवीय

भाषा में दो अलग-अलग स्तरों पर क्रमबद्धता है जो किसी भी और संप्रेषण के तरीके में नहीं पाई जाती । मानवीय भाषा दो स्तरों पर संरचित है - ध्वनियों के स्तर पर और वाक्यों के स्तर पर । एक अनूठी बात है दोनों स्तरों पर । एक ओर तो पूर्ण आजादी हमें ध्वनियों को मिलाकर असंख्य वाक्य बनाने की है । दूसरी ओर, दोनों स्तरों पर स्पष्ट नियम हैं जिनका उल्लंघन करना अक्सर कठिन होता है । बातचीत का सफल माध्यम बनाने के लिए भाषा की संरचना में इन दोनों का होना आवश्यक भी है । यदि असीम सृजनात्मकता न हो तो हम अपनी हर बात न कर सकें और यदि नियमों का बन्धन न हो तो दूसरा हमारी बात समझ न सके । इसी बात को हम आगे के उदाहरणों से समझते हैं ।

ध्वनि के स्तर को लीजिए ।हिन्दी में "ड़" और "ढ़" केवल स्वरों के मध्य में ही आ सकते हैं,कोई भी हिन्दी का शब्द इन ध्वनियों से आरंभ नहीं हो सकता- गाड़ी,घोड़ा,बढ़ई,पढ़ाई,आदि । यह भी कह सकते हैं कि "ड" और "ढ" ध्वनियां स्वरों के मध्य में क्रमश: "ड़" और "ढ़" हो जाती हैं (यह अलग बात है कि विदेशी शब्दों सोफ़ा तथा रेडियो ने इस नियम के कुछ अपवाद पैदा कर दिये । अब शायद कुछ नये शब्दों में भी,"ड" भी एक स्वरों के मध्य में आने लगे । भाषा में परिवर्तन आने का यह भी एक साधन है।) अरबी भाषा में कुल मिलाकर 30 ध्वनियां हैं । इन्हीं को मिला-जुला कर अरबी भाषा के हजारों शब्द बनते हैं । लेकिन इन ध्वनियों को हम जैसे चाहे वैसे नहीं

मिला सकते । उदाहरण के लिए अरबी भाषा का नियम है कि शब्द अधिकतर व्यंजन से ही शुरू हों और शब्दों की संरचना व्यंजन-स्वर- व्यंजन-स्वर··आदि के अनुसार ही हो ।

अंग्रेजी भाषा की संपूर्ण शब्द संपदा 24 व्यंजनों एवं 20 स्वरों को मिलाकर बनी है । "ड" को छोड़कर आप किसी भी व्यंजन से अंग्रेजी में शब्द शुरू कर सकते हैं । लेकिन जब दो या दो से अधिक व्यंजनों को मिलाने की बात आती है- तो अंग्रेजी में इतनी आजादी नहीं । कड़े नियम हैं और इन नियमों का उल्लंघन कर अंग्रेजी का कोई शब्द नहीं बन सकता। किसी भी शब्द के आरम्भ में 3 से अधिक व्यंजन नहीं हो सकते तात्पर्य उच्चारण से है,वर्णमाला से नहीं । यदि हमें पूर्ण स्वतंत्रता हो तो गणित की दृष्टि से हम 24 व्यंजनों के 6072 तीन-तीन व्यंजनों के समूह बना सकते हैं । लेकिन अंग्रेजी में केवल निम्नलिखित व्यंजन समूह पाये जाते हैं :

street	स् + ट् + र्
split	स् + प् + ल्
spring	स् + प् + र्
spew	स् + प् + च्
screw	स् + क् + र्
square	स् + क् + व्
skew	स् + क् + य्
sclerosis	स् + क् + ल्

छह हजार से भी अधिक संभव समूहों में से अंग्रेजी में केवल आठ ही समूह

बनाये जा सकते हैं । यही नहीं, अंग्रेजी के किसी शब्द के आरम्भ में यदि 3 व्यंजन होंगे तो उनमें से पहला व्यंजन "स" के सिवा और कुछ नहीं हो सकता दूसरा व्यंजन केवल "प", "ट" या "क" हो सकता है और तीसरा केवल "य","र","ल" या "व" हो सकता है इस प्रकार sprig या splick तो अंग्रेजी के नये शब्द हो सकते हैं परन्तु plsick या rpsig कभी नहीं ।

ध्वनियों से शब्द बनाने के नियम हैं वो शब्दों से वाक्य बनाने के भी नियम हैं । हिन्दी भाषा का नियम है कि क्रिया सामान्यत: वाक्य के अन्त में ही आयेगी । अंग्रेजी में क्रिया वाक्य के मध्य में आती है । हम अपनी भाषा में असंख्य वाक्य समझ सकते हैं, बना सकते हैं, लेकिन नियमों की हद में रहकर ही । अंग्रेजी के निम्न शब्दों को देखिए ।

1. book 2. a 3. read
4. is 5. she 6. ing

हम इन शब्दों को किस-किस क्रम में मिलाकर अंग्रेजी के सही वाक्य बना सकते हैं :

(a) 543621 : She is reading a book.

(b) 453621 : Is she reading a book.

शायद यही । यदि हम अन्य क्रम बनायेंगे तो ऐसे वाक्य बनेंगे जो किसी को समझ में नहीं आ सकते । जैसे :

(c) 364512 : Reading is she book a. (x)

(d) 621435 : Ing a bock is read she.(x)

(e) 135246 : Book read she a is ing.(x)

यही नहीं -ing केवल read के साथ ही जोड़ा जा सकता है । यदि a को प्रश्न बनाना हो तो केवल एक ही तरीका है कि is को वाक्य के आरंभ में कर दिया जाए और यदि (a) को निषेध वाचक वाक्य बनाना हो तो not का स्थान निश्चित है । एक वाक्य को दूसरे वाक्य में कैसे बदला जाये यह पहले वाक्य की संरचना पर निर्भर करता है ।

यदि इन नियमों का पालन न किया जाए तो हम जो कह रहे हैं या लिख रहे हैं उसका अर्थ या तो कोई और समझ ही नहीं सकता और यदि समझेगा भी तो भी बहुत प्रयास के बाद । यदि भाषा में ऐसे कोई नियम नहीं हो तो उसकी सृजनात्मकता व विविधता तो शायद बढ़ेगी । लेकिन एक ही बात को कहने के बहुत से ढंग हो जाएंगे और एक ही वाक्य से बहुत से अर्थ निकाले जा सकेंगे । इसी-लिए दो स्तरों पर संरचना भाषा की संभावना बढाती है ।

ध्वनि और वाक्य के स्तर पर संरचित भाषा अपने भावों और विचारों को प्रकट करने का एक सफल माध्यम है । साथ ही भाषा के ऐतिहासिक, मानसिक एवं सामाजिक पहलू हैं जिन्हें भाषा की परिभाषा एवं संरचना से अलग नहीं किया जा सकता । सदियों से चला आ रही, निरन्तर बदलती, जन्म से ही अपने पूर्वजों से विरासत में मिली, भाषा वह माध्यम है जिससे हर इंसान अपनी पहचान बनाता है और दूसरों की पहचान बनाता है और दूसरों की पहचान समझता है । भाषा का प्रयोग करना सीखना वास्तव में अपनी पहचान बनाये रखकर दूसरों की बात समझना ही है ।

इस लेख में हमने सिर्फ शब्द वाक्य संरचना की दृष्टि से समझने की कोशिश की है कि भाषा क्या है । भाषा क्या है सवाल का यह मात्र एक पहलू है ।

रमाकांत

हृदयकांत

बात खतों की

संशोधित पुस्तक के नये रूप को देख मैंने उसे बड़े उत्साह से उठाया और उसपर पहले एक नजर फेरी। कहीं कुछ खटका फिर गौर से पुस्तक के हर पन्ने पर बने चित्रों को देखा । यह कहते हुए बड़ा अफसोस है कि सारी पुस्तक में जहाँ लड़कों के कई सारे चित्र हैं-खेलते हुए,प्रयोग करते हुए,परिभ्रमण पर जाते हुए; वहीं केवल एक चित्र में लड़की का चेहरा नजर आया और वह भी गलत अवलोकन लेते हुए ।

क्या हो•वि•लड़कियां नही सीखती? या फिर वे प्रयोग नही करतीं या खेलती भी नहीं हैं? क्या यह संभव है कि चित्र बनाने वाले या तस्वीर खींचने वाले के दिमाग में एक छवि है "छात्र" की- उसमें छात्रा कभी अपना हक्कपूर्ण स्थान नही ले पाती ?

"एकलव्य"- एक शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत संस्था है। एक प्रगतिशील संस्था जो कि एक जागरूक कार्यक्रम चलाना चाहती है-और उससे ऐसी नजरअंदाजी । जिस कार्यक्रम ने इस समाज की अनेक प्रचलित मान्यताओं और रूढियों को ललकारा है, उससे यह अपेक्षा करना कि वह लिंगभेद के खिलाफ जागरूकता बढ़ाये- क्या यह ज्यादती है ? और जब जागरूकता लाना तो दूर,कार्यपुस्तक खुद इस भेदभाव का शिकार बन जाती है तब....

चयनिका शाह, बम्बई

प्राथमिक शिक्षण का लेख पढ़ने पर लगा कि किस तरह मिट्टी के खेल खिलौनों के माध्यम से बच्चों को मुखर और क्रियाशील बनाया जा सकता है । जब भी मैं होशंगाबाद विज्ञान पढ़ती हूं वह मुझ में एक दृढ़ विश्वास गहराता जाता है -हां, यही तो तरीका है सिखाने और सीखने का•••बच्चों का उद्वेग, यह भागीदारी, यही तरीका है बच्चों की जिज्ञासा को बन्धनों से मुक्त करने का-यही वह तरीका है जो होना चाहिए । कभी-कभी मेरी इच्छा होती है कि काश मैं फिर एक बच्ची बनूं ताकि मैं भी चीजों को कर सकूं,करके परख सकूं । चीजों के काम करने की युक्तियां अपनी तरह से खोज सकूं, मस्तिष्क की गहराइयों से उन्हें खोद सकूं, प्रकृति के रहस्यों को प्रकृति के सम्पर्क में रहते हुए उद्घाटित कर सकूं ।

मीरा नायर, हैदराबाद

इतनी अच्छी सामग्री शिक्षा के सोच पर बड़ी ताजगी देती रही है, खासकर खासे टी•वी• प्रसारणों के अंतराल में ।

अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करने की इच्छा तो है, मनोबल नहीं है । सोचिए एक पुरूष इस व्यवस्था की गुलामी में जकड़ सकता है तो नारी की क्या हालत होगी । "पिता का पत्र•••" एक मार्मिक अभिव्यक्ति किसी आजाद दिमाग की है और उसे हम बर्दाश्त नहीं कर पाए ।

एम.एल.मित्तल,भोपाल

डाक पंजीयन क्रमांक J-2/M.P./33/22 दिनांक 5.12.86 HSD

:: संस्कृति के सम्मान और संवर्द्धन की बहुआयामी पहल ::

- लोक कलाओं के लिए देश का सबसे बड़ा एक लाख रूपये का एक मात्र पुरस्कार – तुलसी सम्मान ।
- संगीत, ललित कला, रंगमंच और नृत्य के लिए एक-एक लाख रूपये का अलग-अलग राष्ट्रीय पुरस्कार – कालीदास सम्मान ।
- साहित्य, रूपंकर, और प्रदर्शन कलाओं के लिए राज्य स्तरीय शिखर सम्मान । यह सम्मान प्रत्येक कलाओं के लिए 21 हजार रूपये का है ।
- संगीत, रूपंकर, साहित्य और रंगमंच में रचनात्मक प्रयास के लिए एक हजार रूपये प्रतिमाह की चार फेलोशिप । नृत्य तथा लोक कलाओं के लिए तानसेन सम्मान ।
- आदिवासी और लोक कलाओं के संरक्षण के लिए कला केन्द्रों, मौखिक परम्परा के संरक्षण के लिए संस्थान, ग्वालियर में हिन्दुस्तानी संगीत के लिए एक राष्ट्रीय विद्यालय, पांडुलिपि संग्रहालय, उज्जैन में संस्कृत नाट्य मंडप, भोपाल में राजकीय पुरातत्व संग्रहालय के लिए एक नये काम्पलेक्स तथा अच्छी फिल्मों के लिए आर्ट थियेटर की स्थापना का निर्णय ।
- कविताओं के लिए एक लाख रूपये का राष्ट्रीय कबीर सम्मान तथा पचास हजार रूपये के राष्ट्रीय इकबाल सम्मान की स्थापना ।
- भोपाल, उज्जैन तथा सागर के अतिरिक्त ग्वालियर, जबलपुर और इन्दौर में नये सृजनपीठ स्थापित करने का निर्णय ।

सू.प्र.सं. 6800397/86

मध्य प्रदेश में साधना और सृजनात्मकता को सम्मान

एकलव्य, ई-1/208 अरेरा कालोनी, भोपाल द्वारा प्रकाशित एवं अनुपम मुद्रण द्वारा मुद्रित
संपादन एवं वितरण संबंधी संपर्क : एकलव्य, कोठी बाजार, होशंगाबाद - 461001